जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति प्रवर्तन की पावन प्रेरक

सिद्धान्तवाचस्पति, पूज्य आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी के

४९वें जन्म दिवस के शुभ अवसर पर

पूज्य माताजी के कर कमलों में सादर समर्पित

समयसार अमृत-कलश पद्यावली

रचयित्री–सुशिष्या परमपूज्य विदुषी आर्यिका

१०५ श्री अभयमती माताजी

शरद् पूर्णिमा
१-११-१९८२

फिक्की आडोटोरियम
नई दिल्ली
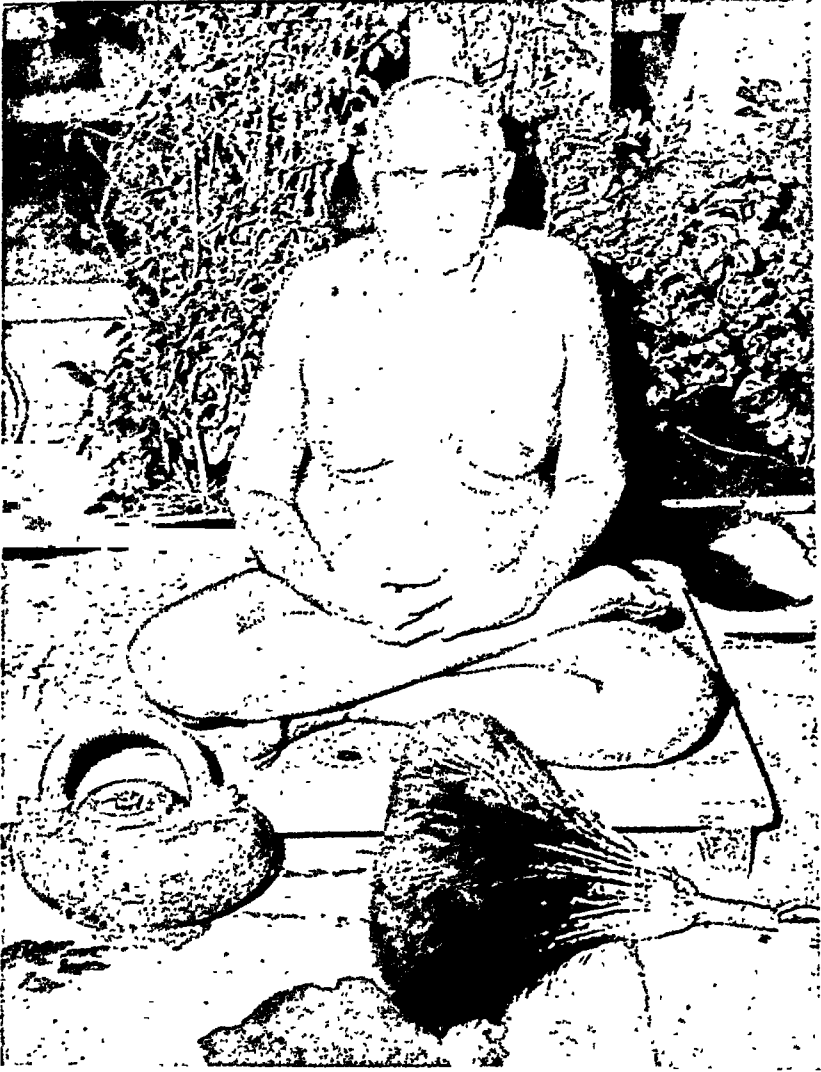
आचार्य धर्मसागर जी महाराज

प्रकाशकीय

समयसार एवं आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव ये दोनों नाम जैन समाज में बहुप्रचलित हैं। नाम प्रचलन के साथ ही समाज पर इनका महान् उपकार भी है क्योंकि आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव ने समयसार में जो आत्म सम्बोधन एवं आत्मा के सच्चे स्वरूप को भर दिया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव स्वयं दिगम्बर मुनिराज थे और अध्यात्म के अवलम्बन से भेद ज्ञान को प्राप्त करके आत्म रमण जैसा महान् सुख प्राप्त किया था। उन्होंने जो कुछ लिखा वह आत्मा से अनुभूति पूर्ण विषय को सामने रखा है। इस समयसार ग्रन्थराज को विस्तार से समझने के लिये दिगम्बर आचार्य श्री अमृतचन्द्रसूरि ने आत्मख्याति नामक टीका लिखी एवं साथ ही सार रूप में पद्य में कलशों की रचना की। वे कलश संस्कृत में होने से आम लोगों के समझने में कठिनाई होती है इस बात को दृष्टि में रखते हुए पू० आर्यिका श्री अभयमती माताजी ने उन अमृत कलशों का पद्यानुवाद करके एक महान् उपलब्धि समाज को प्रदान की है।

पू० श्री अभयमती माताजी ने पद्यानुवाद को आर्यिकरत्न श्री ज्ञानमती माताजी के पास देखने के लिये भेजा और पू० माता जी ने प्रत्येक अधिकार के सारांश लिखने हेतु प्रेरणापत्र भिजवाये फलस्वरूप पू० आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी ने पद्यानुवाद को पढ़कर उसको छपाने की स्वीकृति दी साथ ही हर अध्यायों के सार को स्वयं परिश्रम करके लिख कर हमें प्रदान किया है अतः हम दोनों माताजी के उपकार को विस्मृत नहीं कर सकते, साथ ही जिन्होंने अथक परिश्रम करके प्रेस कापी तैयार करके भेजी है ऐसे वयोवृद्ध विद्वान् पं० श्री कमलकुमार जी शास्त्री खुरई वालों को आभार दिये विना नहीं रह सकता। इस ग्रन्थ के प्रकाशन में खुरई समाज ने जो आर्थिक सहयोग प्रदान किया उनका भी हम आभार मानते हैं। सभी पाठकों के लिये यह ग्रन्थ आत्म कल्याण के हेतु कारण बने यही प्रकाशन की सार्थकता होगी।

रवीन्द्रकुमार जैन

दो शब्द

कुन्दकुन्द स्वामी ने समयसार के प्रारम्भ में ही कहा है कि इस जीव को काम-भोग और बन्ध की कथा श्रुत है, परिचित है और अनुभूत है परन्तु स्वकीय गुण पर्यायों से अभिन्न और परकीय गुणपर्यायों से भिन्न अखण्ड आत्म द्रव्य की उपलब्धि दुर्लभ है। औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के काल में कदाचित् होती भी है तो पुनः जीव उसी अज्ञान तिमिर के गर्त में पतित हो जाता है। उपर्युक्त दो सम्यक्त्व असंख्यात वार होते और छूटते रहते हैं। हां क्षायिक सम्यक्त्व का योग वार-वार नहीं मिला। वह होकर कभी छूटता नहीं। इसे प्राप्त करने वाला जीव संसार में चार से अधिक भव धारण नहीं करता।

समयसार में कुन्दकुन्द स्वामी ने उसी एकत्व विभक्त आत्मा की उपलब्धि का प्रयत्न किया है। जीव और पुद्गल द्रव्य के संयोग से निर्मित इस संयोगी पर्याय में जीव क्या है ? और पुद्गल क्या है ? इसका भेद विज्ञान कराने के लिये भरसक प्रयत्न किया गया है। इसी समयसार पर अमृतचन्द्राचार्य ने आत्मख्याति टीका लिख कर कुन्दकुन्द स्वामी के हार्द को स्पष्ट किया है। यद्यपि आत्मख्याति की भाषा क्लिष्ट होने से साधारण जनगम्य नहीं है तथापि उसकी दृष्टान्त वहुल शैली विषय को स्पष्ट करने में पूर्ण सक्षम है। इसी टीका के अन्त में उन्होंने विविध छन्दों में कलश काव्य लिखे हैं। ये काव्य सचमुच ही आत्मख्याति रूपी भवन के शिखर पर कलश की शोभा बढ़ा रहे हैं।

कुछ वर्ष पूर्व इन कलशों का हिन्दी अनुवाद आचार्य विद्यासागर जी महाराज ने निजामृतपान नाम से किया था जो कई स्थानों से प्रकाशित हो चुका है। उन्हीं कलशों के हिन्दी पद्यानुवाद करने का दूसरा प्रयास श्री १०५ आर्यिका अभयमती माता जी ने किया है। इनकी पद्यावली विविध छन्दों में होने से लय के साथ पढ़ी जाती है। जब माता जी अपने मधुर कण्ठ से इन छन्दों का पाठ करती हैं तब श्रोता मन्त्र मुग्ध सा हो जाता है।

माता जी का उपयोग निरन्तर ज्ञान की आराधना में निमग्न रहता है। परम विदुषी आर्यिकारत्न ज्ञानमती माता जी की आप छोटी बहिन हैं, बाल ब्रह्मचारिणी हैं तथा संस्कृत भाषा के ज्ञान से परिपूर्ण हैं। टिकैत-

नगर की रहने वाली हैं। इनका पूरा परिवार अत्यन्त धार्मिक तथा संसार परिभ्रमण से भीरु है। इनकी बड़ी बहिन आर्यिका हैं, माता भी आर्यिका हैं और भाई भी गृहविरत होकर श्री १०५ आर्यिका ज्ञानमती माता जी के सन्निधान में रह कर ज्ञानाराधना करते हैं। जो भाई घर में हैं वे भी साधु सत्संग में अपना अधिक समय व्यतीत करते हैं।

प्रकीर्णक रचनाएँ माता जी ने बहुत की हैं पर ग्रन्थ के अनुवाद के रूप में इनकी यह प्रथम रचना है। अब पुरुषार्थसिद्धयुपाय का हिन्दी पद्यानुवाद कर रही हैं। आशा करता हूँ कि पाठक इस रचना से अपने ज्ञान की वृद्धि करेंगे और माता जी इसी प्रकार अनेक ग्रन्थों की रचना करती रहेंगी। इस साहित्याराधना के लिये माता जी का आभारी हूँ।

सागर
१३-११-१९८१

पन्नालाल साहित्याचार्य

प्रस्तावना

समयसार है शुद्ध मणी सम, सच्ची मोक्ष निशानी है।
समयसार जीवन की रेखा, भव्यजनों की खानी है॥
समयसार ऋषियों का भूषण, शीलवान का पानी है।
सदा रहे जयवंत वास्तविक, समयसार सुखदानी है॥

"समयसार" मतलव उत्कृष्ट आत्मस्वरूप की उपलब्धि। "समय" यानी शुद्ध आत्मा चिदानंद प्रभु "सार" यानी अपने श्रेष्ठ गुणरूपी रत्नों से सुशोभित है ऐसा समयसार स्वसंवेद्य सब अर्थों में सारभूत आत्मपदार्थ है। चैतन्य ही जिसका चिह्न है तथा जो निर्विकार है, सुख समुद्र में डुबकी लगा रहा है ऐसा समयसार है। जोकि परम तेज आनंद का धाम है।

ऐसे समयसार को कौन प्राप्त कर सकता है ?

जो आत्मश्रद्धालु हो, सच्चे देवशास्त्र गुरु के प्रति जिन्हें सच्ची लगन हो, दुराचारी पापी व्यसनी आदिक न हो, भव्य हो, भद्रपरिणामी कषाय की मंदता तथा संयमी जीवन हो, विषय भोगों से उदासीन प्रवृत्ति हो, गुणग्राही हो, ऐसा व्यक्ति ही समयसार को प्राप्त कर सकता है। यथोक्तं—

मायावी दूषकोऽविद्वानर्थी क्रोधी च लोभवान्।
दुष्टात्मा व्रतहीनोऽर्हत्प्रतिष्ठायां न शस्यते॥

अर्थ—क्रोधी मानी मायावी लोभी दुष्टात्मा व्रतहीन पुरुष प्रतिष्ठा में योग्य नहीं हैं। अब जरा विचारिये जब ये प्रतिष्ठा में योग्य नहीं है तब फिर समयसार को कैसे प्राप्त कर सकते हैं। अर्थात् नहीं कर सकते।

समयसार किसको पढ़ने का अधिकार है ?

जिन्हें हेय उपादेय वस्तु को पहिचानने की योग्यता हो, विशेष क्षयोपशम हो, सच्ची धारणा शक्ति से युक्त हो, अनेकांत के मर्म को एवं वस्तु स्थिति को सुचारु रूप से समझने की योग्यता रखता हो एवं क्रम क्रम से प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग, का पूर्व में जिन्होंने अभ्यास कर लिया है ऐसा भव्यजीव ही द्रव्यानुयोग में प्रवेश कर समयसार पढ़ने का अधिकारी माना गया है ऐसा आगम का वचन है।

समयसार पढ़ने से क्या लाभ है ?

समयसार पढ़ने से स्वपर का भेदविज्ञान होता है। भेदज्ञान से शुद्ध आत्मानुभूति प्रगट होती है। अनुभूति प्राप्त होने पर परद्रव्यों से उदासीन वृत्ति होती है। पुनः क्रम-क्रम से कर्मों का निरोध होकर संवर पूर्वक निर्जरा होकर परम्परा से या साक्षात् मोक्ष की प्राप्ति होती है।

समयसार कलश का क्या अर्थ है ?

जिस प्रकार मन्दिर रत्न आदिक से शोभित होकर भी विना पूर्ण कलश के सुशोभित नहीं होता, इसी प्रकार से समयसार रूपी मंदिर में यदि उत्तम गुणरूपी रत्नों का कलश न हो तो विशेष शोभा नहीं। यह समयसार कलश के द्वारा "चहुँ ओर से प्रकाशित हो रहा है। "कलश" शब्द विशेष मंगल स्वरूप है। मांगलीक होकर भी विशेष रूप से दर्शनीय एवं पूजनीय भी है। इस प्रकार समयसार अपने भिन्न-भिन्न कलशों से वृद्धिगत हो रहा है, श्री कुन्दकुन्ददेव ने परम आध्यात्मिक समयसार की रचना करके परम स्वात्मानुभूति को प्राप्त करके अन्य भव्यात्माओं के लिए आत्मानुभूति के निमित्त स्वरूप ऐसा अभूतपूर्व अद्भुत कार्य करके दिखा दिया। जैसा कि कहा है।

"आचार्य कुन्दकुन्द भी थे देश के मुनीश
जो रचते थे अध्यात्म समयसार किसी दिन
मुनि बनते थे हजार हाँ विहार किसी दिन।"

इसी समयसार रूपी जिन मंदिर में अमृतचन्द्र सूरि ने विशेष चित्र-विचित्र गुणरूपी रत्नों से सुसज्जित कलश रूप में सोने में सुगंधी मिला कर अद्भुत, अपूर्व समयसार कलश की रचना करके भव्य मनमोहक अलौकिक भव्यजनों को शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति में निमित्त स्वरूप ऐसा कार्य करके सिद्धों की श्रेणी में अपना नाम अंकित कर दिया। इस प्रकार अमृतचन्द्र सूरि ने पहले गद्य टीका लिख कर उसी में पद्य कलश की अद्भुत रचना की। इस पर भी जव तृप्ति नहीं हुई, तब द्वितीय "सरस" सरल टीका श्री जयसेन आचार्य ने की। जिसे पढ़कर विस्तार रुचि वाले भव्य पुरुष सहज ही वोध प्राप्त कर सकते हैं। कतृकर्म अधिकार में अमृत कलश की गाथा ६२वीं में श्री अमृतचन्द्र सूरि ने कहा है।

"आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत् करोति किम्।"

अर्थात् आत्मा ही ज्ञान है, ज्ञान ही आत्मा है, कैसा चमत्कारी श्लोक

वड़े-वड़े शास्त्रों को निचोड़ कर रख दिया। ऐसे प्राचीन गुरुओं (आचार्यों) के प्रति स्तुति करते हुए कवि कहते हैं।

"असितिगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिंधुपात्रे।
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी॥
यदि लिखति गृहीत्वा शारदा सर्वकालं।
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥

अर्थ—हे नाथ! यदि समुद्र रूपी पात्र में नीलगिरि के बराबर कज्जल हो, कल्प वृक्ष की उत्तम शाखा लेखनी हो, समस्त पृथ्वी कागज़ हो और सरस्वती उन सबको लेकर स्वयं सदा लिखती रहे तो भी आपके गुणों के पार को प्राप्त नहीं होती, अर्थात् आप अत्यन्त गुणों के भण्डार हो। इस प्रकार जब सरस्वती तीर्थंकर देव का एवं गुरुओं के गुणों का वर्णन करने को समर्थ नहीं हैं तो हम जैसे अल्प बुद्धि युक्त कैसे गुरुओं के गुणों का वर्णन कर सकते है। इस समयसार का पद्यानुवाद मूलकृति को आधार लेकर ही हुआ है। अर्थात् श्री अमृतचंद्र सूरिकृत अमृत कलश जो मूल संस्कृत में है उसी मूल संस्कृत कलश के आधार पर बिलकुल उसी रूप में हिंदी पद्यानुवाद इसका हुआ है।

इस प्रकार कुंदकुंद देवकृत मूल कृति एवं अमृतचंद्र सूरि की आत्म-ख्याति नाम की टीका तथा पद्य कलश को रचा एवं जयसेन आचार्य कृत तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका वहुत ही स्पष्ट सरल रूप में दिखी जिसे प्राप्त करके मुझे अपूर्व आनंद प्राप्त हुआ। पुनः पुनः स्वाद लेकर कुछ इन सभी में से गुण रूपी रत्नों को विकसित करने की भावना जाग्रत हुई। फलस्वरूप परम्परागत पूर्वाचार्य के अनुसार मात्र आत्म विशुद्धि के लिए भिन्न भिन्न सुन्दर 'सरस' छंदों में हिंदी अनुवाद करने की पुनः पुनः भावना जाग्रत हुई। श्री पार्श्वनाथ वड़े बाबा के अतिशय प्रसाद से एवं गुरुओं के आशीर्वाद से शीघ्र ही मेरी भावना पूर्ण सफल हुई। अतः मैंने कुछ भी नहीं किया। मेरे अन्दर इतनी योग्यता नहीं है फिर भी विशेष भक्तिवश सर्वज्ञ देवद्वारा प्रेरित सरस्वती, वागीश्वरी, भारती, मुझ पर प्रसन्न होकर मेरी इच्छानुसार वड़े उत्साह पूर्वक विभोर होकर स्वयं आकर भिन्न-भिन्न सरस छंदों में पद्यानुवाद के रूप में सुन्दर लेखनी चलायी। वह लेखनी सभी जनता के लिए मनमोहक अत्यंत प्रिय अभूतपूर्व लगी। अतः इस रचना में सहजिक अल्पवुद्धि के कारण कुछ त्रुटियां हो सकती हैं सो विज्ञजन सुधारकर शुद्ध पढ़ने की कृपा करें। अर्थात् दोषग्राही न बनकर गुणग्राही बनें। अन्त में खुरई समाज का

वड़ा गौरव है जिन्होंने इतना महान् मुख्य ग्रन्थ छपाने के लिये उत्साह वढ़ाया। खुरई एक धार्मिक केंद्र स्थान है। जिसमें प्राचीन गुरुकुल विद्यमान है। अभी यहां की विदुषी महिलाओं ने "महिला मंडल" खोलकर एक नवीन कार्य किया। जिसके माध्यम से "महिला सभा, महिला प्रतियोगिता, महिला संगीत मंडली का भी वीच-वीच में आयोजन रखा गया। सभी महिलाओं ने प्राय: करके भाग लिया। आशा करती हूँ इसी प्रकार से भविष्य में भी सभी महिलायें गुरु की आज्ञा पालन करती हुई महिला मंडल में कटिवद्ध रहें" जिससे उनके अन्दर अपूर्व ज्ञान ज्योति जगे। क्योंकि जैन संस्कृति के विना "श्रमण संस्कृति" और "श्रमण संस्कृति" के विना "जैन संस्कृति" कायम नहीं रह सकती। यह नियम है। चातुर्मास में खुरई समाज ने धर्म लाभ लेकर अच्छी धर्म प्रभावना की। इसी प्रकार से गुरुओं का चातुर्मास कराकर धर्म लाभ लेकर प्रभावना करें। यही वार-वार आशीर्वाद है।

"अन्दर का पट खोल रे, अन्दर का पट खोल।
"अभयमती" कहती सदा, वाहर से मुख मोड़॥

—अभयमती माताजी

पू० श्री आचार्य गुरुवर १०८ विमलसागर जी का मंगल आशीर्वाद

परम विदुषी आर्यिकारत्न श्री अभयमती जी का यह प्रयास अत्यंत प्रशंसनीय एवं जन-जन के लिए उपयोगी है। ५२ छंदों में जो माताजी ने "सरस काव्य पद्यावली" की रचना की है, वह इस पंचम काल में अत्यंत सराहनीय है। पूज्य माता जी ने इतनी छोटी अवस्था में इतना बड़ा कार्य किया। बुंदेलखंड को ज्ञान ज्योति के द्वारा जगा रही हैं इतनी रुग्ण अवस्था में भी इतना बड़ा कार्य करके धर्म प्रभावना कर रही हैं। मेरा अंतिम यही आशीर्वाद है कि माताजी इस प्रकार से धर्म प्रभावना करती हुई ज्ञान एवं चारित्र की शिरोमणि बनी रहें और शीघ्र ही आरोग्य अवस्था को प्राप्त हों।

सिद्धान्तवाचस्पति आर्यिकारत्न श्रीज्ञानमती माताजी का मंगल आशीर्वाद

मुझे यह बात जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि मेरी शिष्या आर्यिका अभयमती माताजी की लेखनी द्वारा "महान् आध्यात्मिक ग्रंथराज समय-सार कलश" का पद्यानुवाद कार्य सम्पन्न हुआ।

पंचम काल के धर्मधुरीण भगवान् कुंदकुंद देव ने शुद्धात्मानुरागी महामुनियों की आत्मानुभूति हेतु समयसार जैसे ग्रंथों की रचना की। पुनः अमृतचंद्र सूरि ने समयसार की टीका लिखते हुए ललित संस्कृत में कलश रूप श्लोकों में अंतरंग भावों को व्यक्त किया है और यह भी स्पष्ट किया है कि समय—आत्मा का सार। यह महामुनियों द्वारा ही आराध्य है। श्रावकों के लिये तो श्रद्धा का विषय है। "आज व्याकरण ज्ञान में अपरिपक्व मनुष्य समयसार जैसे ग्रंथों का सुव्यवस्थित रूप से अर्थ न समझ करके उसका दुरुपयोग कर रहे हैं। इसलिए आज आव-श्यकता है कुन्दकुन्द की स्याद्वादमयी अमृत वाणी को जन जन तक सुगमरीति से पहुँचाने की।"

आर्यिका अभयमती माताजी को मेरा यही शुभाशीर्वाद है कि जिस प्रकार से उन्होंने यह महान् कार्य किया है उसी प्रकार आगे भी आचार्यों के सिद्धान्तों की रक्षा करते हुए उनकी वाणी का प्रचार प्रसार करती रहें।

—इति भद्रं भूयात्

परम विदुषी पू० आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी

जन्म : टिकैतनगर (बाराबंकी) सन् १९३४ वि. सं. १९९१
असोज शु. १५ (शरद पू.)

क्षुल्लिका दीक्षा : आ. श्री देशभूषणजी से श्री महावीरजी में
सं. २००९ चैत्र कृ. १

आर्यिका दीक्षा : आ. श्री वीरसागरजी से माधोराजपुर, (राज.) में
सं. २०१३ वै. कृ. २

श्री १००८ बाहुबली के चरणों में ध्यान लीन
आर्यिकारत्न अभयमती माता जी

रत्नत्रयविभूपिता-आर्यिका श्री १०५ अभयमती माताजी का संक्षिप्त परिचय

जन्मस्थान—आपका जन्म १४ दिसम्वर सन् १९४२ में टिकैतनगर (उ० प्र०) के परम धार्मिक, गोयल गोत्रीय श्रावक श्री छोटेलालजी की विदुपी धर्मपरायणा पत्नी श्रीमती मोहिनी देवी की कुक्षि से हुआ है। आपका जन्म नाम मनोवती रखा गया।

शैशव से ही आपके ऊपर परिवार की धार्मिकता का प्रभाव सर्वोपरि रहा। १८ वर्ष की अवस्था में आप एक वार अपनी माँ के साथ लाडनूं पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के शुभ अवसर पर पू० आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी के दर्शनार्थ आईं तभी से आपके हृदय में वैराग्य का अंकुर उत्पन्न हुआ। आपके ऊपर भी अपनी वड़ी वहिन मैना के अमिट संस्कार पड़े हुए थे, अच्छा सुअवसर देखकर आपने अपनी वैराग्य भावना को साकार किया। संसार के मोहवंधनों को तोड़कर आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत तथा द्वितीय प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। माता-पिता के अत्यन्त आग्रह करने पर भी आप पुनः वापस घर नहीं गईं तथा यहीं से आपका नया जीवन प्रारम्भ हुआ।

लाडनूँ से परम पू० आर्यिकारत्न श्रीज्ञानमती माताजी आचार्य शिवसागर महाराज की आज्ञानुसार ३ आर्यिका और १ क्षुल्लिका शिष्यों को लेकर सम्मेदशिखर यात्रा के लिए विहार किया तव आपने ब्र० मनोवती के रूप में आर्यिका की व्यवस्था वैयावृत्त्य आदि करते हुए सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र की यात्रा करवाई। वाल्यावस्था से ही सादगीपूर्ण जीवन आपके वैराग्य को वृद्धिगत कर रहा था। दिनोंदिन दीक्षा की भावना उत्कट होती जा रही थी। सम्मेदशिखर यात्रा के दौरान आरा (विहार) में जव पू० माताजी का संघ ब्र० चंदावाई के अत्याग्रह से "जैनवाला विश्राम" में ठहरा पुण्ययोग से आ० श्री विमलसागर महाराज भी ससंघ आरा नगरी में पधारे थे। वहाँ आपने माताजी की आज्ञानुसार आ० श्री से पंचम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। इतने पर भी संतोष न होने पर सन् १९६३ में सम्मेदशिखर में पू० माताजी से सप्तम प्रतिमा ग्रहण की। संघ संचालन के साथ आपने राजवार्तिक, अष्टसहस्री, जैनेन्द्रप्रक्रिया, कातंत्र व्याकरण आदि अनेकों ग्रन्थों का भी पू० ज्ञानमती माताजी के मुखारविंद से गहन अध्ययन किया।

सन् १९६४ में हैदराबाद (आन्ध्र प्रांत) में आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजी से ही क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की। यह दीक्षा उस युग के लिए एक अभूतपूर्व दृश्य को उपस्थित कर रही थी। कुँवारी कन्या के वैराग्य का विहंगम दृश्य देखने के लिए हजारों की संख्या में जनता उमड़ रही थी। लोगों ने हाथी पर जुलूस निकालकर विशेष प्रभावना की। दीक्षा के वाद आपका पूर्ण मनोरथ सफल हुआ, अनेक उच्चकोटि के शास्त्रों का अध्ययन करते हुए संघ में ही रहीं।

आर्यिका दीक्षा—सन् १९६९ में अतिशयक्षेत्र श्री महावीरजी पर आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। सन् १९७१ में ६ महीने तक आचार्य श्री ज्ञानसागरजी के सांनिध्य में भी धर्म का गंभीर अध्ययन किया।

तीर्थयात्रा एवं वर्षायोग—सन् १९६९ से बुंदेलखंड के तीर्थों की यात्रा करते हुए धर्म प्रभावना की। आपने बुंदेलखंड में भ्रमण करते हुए सागर, ललितपुर, छतरपुर, खुरई, ग्वालियर आदि जिन जिन स्थानों पर चातुर्मास किये वहाँ पर महिलाओं के लिए विशेष संगठन के कार्य किये। इन्द्रध्वज, सिद्धचक्र आदि विधान तथा शिक्षण शिविरों के माध्यम से समस्त जैन समाज को जागृत किया तथा अनेकों ग्रन्थों का पद्यानुवाद भी किया।

काव्य प्रतिभा—गुरुजनों से प्राप्त ज्ञान को आपने अपने वुद्धिवल, मनोवल एवं अभ्यास वल से विकसित कर अनेक प्रकार से समाज को समर्पित किया है। काव्यप्रतिभा तो आपको नैसर्गिक रूप से प्राप्त हुई है। अतएव इस अल्पवय में ही आप १० ग्रन्थों की रचना कर चुकी हैं। ज्ञानाराधना के क्षेत्र में अभी आप से और भी वड़ी उपलब्धियों की आशा है। आपने निम्नलिखित ग्रन्थों का हिन्दी पद्यानुवाद किया है जो सरस एवं साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। छन्दशास्त्रानुसार सरल एवं कठिन ५२ छन्दों का इन पद्यों में प्रयोग हुआ है। काव्य ग्रन्थों के नाम—

(१) अध्यात्म अमृतकलश (२) पुरुषार्थसिद्धयुपाय (३) परमात्मप्रकाश (४) आत्मानुशासन (५) अकलंकस्तोत्र (६) परमानन्दस्तोत्र (७) महावीराष्टकस्तोत्र (८) मंगलाष्टक (९) दर्शन पाठ (१०) स्वरूपसम्वोधन।

मौलिक रचनाएँ—(१) जैनसंस्कृतिशतक (२) पीयूषवाणी (३) अभयवाणी पुष्प १ (४) अभयवाणी पुष्प २ (५) अमृतवाणी (६) महावीर का अमर सन्देश (७) अभयध्वनि (८) एक वृक्ष सात डालियाँ (९) अभय-

गीतांजलि पुष्प १ (१०) अभयगीतांजलि पुष्प २ (११) सोलहकारण भावना (१२) दशधर्म विवेचन ।

समाज संबोधन एवं प्रवचन पटुता—ध्यान और अध्ययन के अतिरिक्त जब भी आपको समय मिलता है उसका उपयोग समाज के हित में करती हैं। अनेक स्थानों पर पारस्परिक कलह एवं वैमनस्य को दूर कर आपने समाज को संगठित करके वहाँ देवपूजा आदि श्रावक कर्तव्यों के प्रति रुचि जागृत की है।

सफल संयम साधिका—महिलारत्न माता मोहिनी देवीजी ने अपनी संतानों को संयम की सफल शिक्षा देकर स्वयं भी आर्यिका के दुर्धर व्रतों को धारण कर "रत्नमती" नाम को सार्थक किया है, उन्हीं की ५ व्रती संतानों में आप भी अन्यतम हैं। आर्यिकारत्न १०५ श्रीज्ञानमती माताजी आपकी अग्रजा हैं जो कि एक शतक ग्रंथरत्नों का प्रणयन, प्रकाशन के कारण संपूर्ण भारत के विद्वन्मंडल की मुकुटमणि हैं। कु० मालती शास्त्री धर्मालंकार एवं कु० माधुरी शास्त्री भी आपकी अनुजा हैं जो विदुषी होने के साथ साथ सरल सुबोध प्रवचन में कुशल हैं। बाल ब्र० श्री रवीन्द्रकुमार जी शास्त्री बी० ए० आपके लघु भ्राता हैं जो संपादन कला में कुशल होने के कारण सम्यग्ज्ञान के प्रचार प्रसार में संलग्न हैं तथा अपने तन मन धन से हस्तिनापुर में जंबूद्वीप की रचना को साकार करने का भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं।

इस प्रकार चारित्रचक्रवर्ती स्व० १०८ श्री आचार्य शांतिसागरजी की परम्परा में स्व० आचार्य १०८ श्री वीरसागरजी से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त यह व्रती संघ वीतराग देव गुरु और परमागम का परम भक्त, जिनमार्ग की महती धर्मप्रभावना में योगदान कर रहा है।

आपके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रारम्भ से ही व्याधियुक्त शरीर होते हुए भी संयम में अत्यन्त दृढ़ जप तप ध्यानाध्ययन में निरन्तर लीन रहती हैं। आपने लाखों की संख्या में जाप्य करके अपने मनोबल द्वारा आज सारे बुन्देलखण्ड की यात्रा सफलता पूर्वक निर्विघ्न सम्पन्न की। मैं समझता हूँ कि आपके ध्यान और जप संयम आदि शक्तियों के बल पर ही आपका यह दुर्बल शरीर भी सारी समाज के लिए अपूर्व दिशा निर्देश कर रहा है।

अन्त में भगवान् महावीर से मेरी यही प्रार्थना है कि यह विभूति शतायु होकर इसी प्रकार से तीर्थंकर वाणी का सम्यक् प्रचार करती रहें।

"न धर्मो धार्मिकैर्विना"

पं० गणेशीलाल जैन साहित्याचार्य
प्राचार्य आ० श्री वीरसागर संस्कृत विद्यापीठ, हस्तिनापुर (मेरठ)

विद्वानों के अभिमत

अपनी बात

भारतवर्ष ऋषि प्रधान और कृषि प्रधान देश है जिसमें अनेकों रत्न भरे पड़े हैं। उस प्रधान देश में देव शास्त्र गुरु की अचिन्त्य महिमा है। भगवान् ऋषभदेव स्वामी से भगवान् महावीर स्वामी तक २४ तीर्थंकर इस भूमि में अवतरित हुए। उनका धर्म तीर्थ आज हमें मार्ग दर्शन कर रहा है। पूज्य ब्राह्मी-सुन्दरी जैसी आर्यिका माताएं इस धरा पर अनेकों हुई हैं। उन्हीं की परम्परा में वर्तमान अनेकों आर्यिकारत्न मातायें हमें धर्मज्ञान कराकर जिनवाणी का प्रचार प्रसार करने में तत्पर हैं। जिनकी धर्मकीर्ति चारों दिशाओं में फैल रही है।

आर्यिकारत्न पूज्य १०५ अभयमती माता जी चारों अनुयोगों का अध्ययन नित्य कर रही हैं। उनपर अपने मौलिक विचार लिख रही हैं। अस्वस्थता में भी इस विशाल रचना को रचकर महा पुण्य की भागी ही नहीं अपितु मोक्षपथ की अनुगामिनी बनी हैं।

इनकी रचनायें—आत्मपथ की ओर, १६ स्वप्न, माता के १६ स्वप्न, चन्द्रगुप्त सम्राट् के द्वादशांक विवेचन और १६ भावनायें हमारे सम्मुख हैं। उत्तम रचनायें हैं।

पाठक इनका पूरा-पूरा लाभ उठावें ऐसी आशा करता हूँ। प्रस्तुत समयसार अमृत-कलश की रचना घर-घर में पढ़ी जावेगी ऐसी आशा है। मेरी भावना है सभी लाभ उठावें।

बाबूलाल जैन जमादार

२३।११।१९८० महामंत्री, अ०भा०दि० जैन शास्त्री परिषद्, बड़ौत (मेरठ)

१०५ पूज्य आर्यिकारत्न अभयमती द्वारा निर्मित समयसार कलशों के छन्दों का हिन्दी का सरल पद्यानुवाद देखा। देखकर अति प्रसन्नता हुई। सचमुच में माता जी ने अति परिश्रम किया है। और मूलकर्ता १०८ अमृतचन्द्राचार्य के भावों को उड़ेल दिया है। माता जी अभयमती की प्रतिभाशक्ति निराली है। आप शतायु हों ऐसी जिनेन्द्र से प्रार्थना है।

वैद्य इन्द्रजीत सिंह

२७।४।८० आयुर्वेदाचार्य, शास्त्री, न्यायतीर्थ

जालौन उ० प्र०

अनुवाद गेय तत्त्व से भरपूर

पूज्या अभयमती माता जी को अभीक्ष्णज्ञानोपयोग के संस्कार उत्तराधिकार में मिले हैं। उनका पूर्ण परिवार आज वैराग्य-पथ पर अग्रसर है। उन सरीखी विदुषी माताओं का सान्निध्य मिलना समाज के लिए सौभाग्य सूचक है।

यह समयसार युग चल रहा है। इधर के दश-बारह वर्षों में उसके अध्ययन-मनन का प्रसार हुआ है। तत्त्व जिज्ञासुओं की भावना भी उसे पढ़ने की रहती है किन्तु रचना के हिन्दी में न होने से वे असुविधा का अनुभव करते हैं। उनकी कठिनाई के निवारणार्थ एवं स्वान्तःसुखाय माता जी ने समयसार-कलश का सरल छन्दों में भावानुवाद प्रस्तुत किया है। अनुवाद गेयतत्त्व से भरपूर है। सामान्यजन भी उसका आनन्द सहज ही ले सकते हैं।

समयसार-कलश के इस सहज, सरल एवं हृदयग्राही भावानुवाद का पाठक वृन्द निश्चय ही स्वागत करेंगे। माता जी के इस प्रशस्त श्रम के लिए हम अनुगृहीत हैं।

नरेन्द्र प्रकाश जैन शास्त्री
२२।६।८० फिरोजाबाद

लौकिक रचना

वर्तमान में जिस प्रकार परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज का पूरा परिवार मोक्षमार्ग में संलग्न है, उसी प्रकार आर्यिका-रत्न अभयमती माता जी का भी समूचा परिवार मोक्षमार्ग में निरत है। अपनी बहिन आर्यिकारत्न ज्ञानमती माता जी के समान ही श्री अभयमती जी संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी भाषा की महान् विदुषी हैं। और साथ ही उन्हीं के समान कवयित्री भी हैं।

जैन वाङ्मय में आचार्य कुन्दकुन्द का 'समयसार' अध्यात्म विद्या का महान् ग्रन्थ है। आचार्य श्री अमृतचन्द्र सूरि ने 'समयसार' के भावों को जिस सफलता से अपने "समयसार कलश" में भरा है उसी सफलता से 'समयसार कलशों का भाव श्री अभयमती माताजी ने अपने "अध्यात्म कलश" में भर दिया है। भावों और भाषा का इतना सुन्दर सम्मिश्रण देखने को अन्यत्र कम मिलता है। विविध छन्दों में "कलशों" का यह पद्यानुवाद अत्यन्त सफल एवं सुन्दर है। अभयमती माता जी का यह प्रयास स्तुति करने योग्य है।

दरबारीलाल जैन, एम. ए., शास्त्री
वर्णी कालेज, ललितपुर

स्याद्वाद गंगा

श्री आर्यिकारत्न पूज्य १०५ अभयमती माता जी द्वारा रचित सभी रचनाओं को देखने का सुअवसर मिला। आज की स्वाध्याय परम्परा में "समयसार" जैसे आध्यात्मिक ग्रंथ का सरलतम भाषा में पद्यानुवाद कर अत्यन्त कठिन कार्य को भी सरलतम कर दिया है। यह रचना "रामचरित मानस" की भाँति प्रत्येक जनसाधारण के लिये उपयोगी है।

माताजी की द्वितीय रचना स्वानुभव के आधार पर "आत्म पथ की ओर" में जिन लेखों को लिखा है। निश्चित ही उपयोगी हैं। इनसे प्रत्येक स्वाध्यायी जन लाभ प्राप्त कर सकेंगे।

तृतीय रचना अमृतचन्द्राचार्य कृत "पुरुषार्थसिद्ध्युपाय" का हिन्दी पद्यानुवाद पूर्णरूप से मौलिक रचना है। इस रचना में पू० माताजी ने प्रत्येक श्लोक के पूर्ण शब्दानुवाद को घटित किया है। निश्चित ही उनकी "काव्यरचना" आश्चर्यकारी एवं प्रशंसनीय है।

आशा है सभी रचनाओं को पढ़कर स्वाध्यायीजन आत्मकल्याण करेंगे।

ललितपुर
२-१०-८०

उत्तमचन्द राकेश शास्त्री एम. एम.
संस्कृत प्रवक्ता, वर्णी जैन कालेज

अनूठी रचना

पूज्य श्री १०५ आर्यिकारत्न अभयमती जी की रचना समयसार अध्यात्म कलश का सरस पद्यानुवाद कर जगत् के प्राणिमात्र को बोध प्राप्त कराने में अत्यन्त उपकारी है। पूज्य माता जी संयम नियम का पालन करती हुई अपनी इतनी अस्वस्थ अवस्था में अनेकों उपसर्ग परीषह को सहकर पूर्व काल की सतियों माताओं के आदर्श जीवन को प्रकाशित कर रही हैं एवं इन महान्-महान् ग्रंथों का अध्ययन कर माँ सरस्वती की सेवा करती हुईं अपने समय का पूरा-पूरा लाभ लेती हैं।

मैं इनके उस उदीयमान परिवार की मंगल कामना करता हूँ जिसके पूरे माँ बहिनें भाई आदि सभी के भाव रत्नत्रय धर्म को ही "रत्न" समझें और उन्हीं की सतत साधना में लगकर अपनी आत्म साधना में रत हो गये।

पं० धर्मचन्द जैन, तिवरी (जबलपुर)

पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माता जी

विचित्र छंदोबद्ध काव्य रचना

संसार में सन्मार्ग मिलना अशक्य है फिर भी साधु सन्तों के माध्यम से मार्गदर्शन मिलता है क्योंकि यह चलते फिरते तीर्थ हैं। सागर में रत्न निकलते हैं उसी प्रकार पूज्य माता रत्नमती ने अपनी कूंख से हमें जीवित-रत्न दिए हैं जिनसे हमें सच्चा मार्ग मिल रहा है। आपका पूरा परिवार आत्मसाधना में लगा हुआ भी भगवान् वीतराग की वाणी का सरल हिन्दी भाषा में महान् आचार्यों द्वारा प्रणीत आगम को समाज के सामने लाने का प्रयत्न कर रही वह है पूज्य माता ज्ञानमतीजी जिन्होंने अष्टसहस्री जैसे न्याय के ग्रन्थ की हिन्दी टीका की जो बहुत ही दुःसाध्य कार्य है उसी प्रकार पूज्य माता अभयमतीजी समयसार जैसे परमागम पर हिन्दी छन्दों में लिखकर (जिनवाणी) का प्रसार प्रचार कर रही हैं आपकी विद्वत्ता एवं कविता की सरसता बहुत ही अनूठी है।

आपका क्षयोपशम बहुत है कठिन परिश्रम के साथ कुंदकुंद के समय-सार पर आचार्य अमृतचन्द्र द्वारा लिखे गये कलशों को हिन्दी में छन्दो-बद्ध कर देना महान् कठिन कार्य है जिसे पूज्य माता श्री अभयमतीजी द्वारा किया गया। यह कृति यावच्चन्द्रदिवाकरौ, अमर रहे और जन-जन का कल्याण करे। माताजी चिरायु रहकर सिद्धान्तशास्त्रों का प्रचार करती रहें ऐसी आशा है।

गुलाबचन्द्र पुष्प
टीकमगढ़

११।९।८०

विषयानुक्रमणिका

मंगलाचरण

श्री देव शास्त्र गुरु स्तवन

चौबीसों जिनदेव को नमन करूँ शतबार।
वीतरागता प्रकट हो मम होवे उद्धार ॥१॥
जिनवर की वाणी विमल सरस्वती श्रुत खान।
हे माता मैं नित नमूँ करो कर्म की हान ॥२॥
निरारंभ आशा रहित, ज्ञान ध्यान तप लीन।
ऐसे गुरुवर को नमूँ हो संसार विलीन ॥३॥

श्री कुन्दकुन्दाचार्याय नमः

कुंदकुंद अध्यात्म की रचना करी अपार।
उसमें रमकर नित नमूँ जिससे होऊँ पार॥

श्री जयसेनाचार्याय नमः

जय जय जय जयसेन को नमन करूँ शत बार।
जिससे जैनी जिन बनूँ और बनूँ ओंकार॥

श्री अमृतचन्द्रसूरये नमः

समयसार टीका कलश रचा जु अमृत सूरि।
"अभयमती" नित नमन कर रचा पद्य को भूरि॥

श्री शान्तिसागराय नमः

शान्ति-सिन्धु आचार्य श्री घोरोपसर्ग विजीत।
नमन करूँ जग से तिरूँ, धरूँ आत्म से प्रीत॥

श्री धर्मसागराय नमः

तारो तारो मम गुरो धर्म-सिन्धु ऋषिराज।
अभयमती दिनप्रति नमूँ-धर्म वृद्धि के काज॥

श्री ज्ञानमत्यै नमः

रत्न आर्यिका ज्ञानमति, ऐसा दो वरदान।
श्रद्धा युत गुरु को भजूँ, पाऊँ शांति महान॥

प्रयोजन

समयसार को नमन कर तज विकल्प परमाद।
आत्म विशुद्धि के लिए, रचूँ पद्य अनुवाद॥

श्री समयसार स्तुति

(१)

अरे बन्धुओ ! समयसार ही संजीवन कहलाता है।
श्री समयसार को नमन करूँ जो भव्य जनों को भाता है॥
समयसार ही भेद ज्ञान कर आत्मा ज्योति चमकाता है।
समयसार ही आत्म रसिक को सच्चा सुख दर्शाता है॥

(२)

ज्यों मन्दिर में कलश चढ़ावे, शोभा बनी निराली है।
समयसार अमृत कलशों से पूर्ण सुधा रस प्याली है॥
तरण कला जाने बिन नर ज्यों नहिं समुद्र से तिर सकता।
समयसार जाने बिन नर त्यों ज्ञान ज्योति नहिं पा सकता॥

(३)

समयसार कर भिन्न विवेचक कर्तृ कर्म को दूर करे।
समयसार ही स्वर्ण लोह सम पुण्य-पाप बेड़ी समझे॥
समयसार ही आस्रव को दुख का कारण बतलाता है।
समयसार संवर पूर्वक तप से निर्जरा दिखाता है॥

(४)

समयसार बंधन की बेड़ी को जब पूर्ण हटाता है।
निज के द्वारा निज में रमकर स्वयं मोक्ष पद पाता है॥
सर्व विशुद्ध ज्ञान में रत जो वह ही समयसार पाता।
रस स्वादन कर तृप्त न हो जब पुनः पुनः उसमें रमता॥

(५)

साम्यवाद जो समयसार है उसको पीकर रस चखता।
चेतन रस इक लवण डली सम सदा स्वयं निज में लसता॥
समयसार नित साध्यसाधक का अविरोध कथन करता।
शुद्ध 'अभय' पद प्राप्त कराकर मुक्ति रमा वश में करता॥

पूर्व रंग

जीवाधिकार

अमृत-कलश

जीवाजीवाधिकार

प्रथमतः परमात्मादि नमस्कृतिरूपमङ्गलमाचष्टे—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥१॥

अथ सरस्वतीमभिष्टौति—

अनुष्टुप् वृत्तम्

अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यन्ती प्रत्यगात्मनः ।
अनेकान्तमयी मूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम् ॥२॥

अथ स्वचित्तविशुद्धयर्थं प्रार्थयति—

मालिनी-वृत्तम्

परपरणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावात्-
अविरतिमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः ।
मम परमविशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्ते-
भवतु समयसारव्याख्ययैवानुभूतेः ॥३॥

अथ जिनवचसः समयसारस्य प्राप्ति दृढ़यति—

मालिनी-वृत्तम्

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के,
जिन-वचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः ।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै-
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षंत एव ॥४॥

हिन्दी-पद्यानुवाद

जीवाजीवाधिकार

मंगलाचरण स्वरूप शुद्धात्मा को नमस्कार—

मुक्तक छन्द (मात्रिक)

निज में ही निज आत्मानुभूति से, सदा प्रकाशित रहता है ।
चेतन स्वभाव में रम कर ही, जो सत्व रूप में फलता है ॥
गुण पर्यय युत सब द्रव्यों को, अपने से भिन्न समझता है ।
उस 'समयसार' को नमन करूँ, जो मूल तत्त्व को कहता है ॥१॥

अब सरस्वती देवी-अनेकान्त मूर्ति की स्तुति करते हैं—

मुक्तक छन्द (मात्रिक)

अनन्तधर्म संयुत चेतन को, निज में अवलोकन करती ।
है पर पदार्थ से भिन्नरूप जो निज गुण का चिंतन करती ॥
स्याद्वाद सिद्धान्त विभूषित, शुभ चिह्न निराला है इसमें ।
ये अनेकान्त मूर्ति ऐसी, जो सदा प्रकाशित हो जग में ॥२॥

अब अपने चित्त की विशुद्धि के लिए प्रार्थना करते हैं—

मुक्तक छन्द (मात्रिक)

पर परिणति का कारण जिसमें, है कर्म मोह अनुभाग जहाँ ।
जिसके प्रताप से व्याप्त हुई, कल्मष-कुबुद्धि रागादि महा ॥
चैतन्य मात्र है शुद्ध मूर्ति जो, समयसार व्याख्या न्यारी ।
जिससे मेरी अनुभूति रसिक, हो परमविशुद्ध दशा भारी ॥३॥

अब जिन वचनरूप समय की प्राप्ति को दृढ़ करते हैं—

मुक्तक छन्द (मात्रिक)

दो नय विरोध का पक्ष दूर कर स्यात् पद से चिह्नित भी हो ।
ऐसे जिन प्रभु के वचनामृत में मोह वमन कर रमते जो ॥
वे संत शीघ्र ही समयसार, निज में अवलोकन करते हैं ।
एकान्त पक्ष से रहित नित्य जो परमज्योति अतिशय से हैं ॥४॥

अथ प्राथमिकानां व्यवहारनयोपयोगित्वं प्रदर्श्य निश्चयात्मकानां निश्चयं निश्चिनोति—

मालिनी-वृत्तम्

व्यवहरणनयः स्यात् यद्यपि प्राक् पदव्याम्
इह निहितपदानां हन्त हस्तावलम्बः ।
तदपि परमर्थं चिच्चमत्कार-मात्रम्
परविरहितमन्तः पश्यताम् नैष किंचित् ॥५॥

अथ आत्मन एकत्वं वितनोति

शार्दूलविक्रीडितम्

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः ।
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक् ॥
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयम् ।
तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः ॥६॥

अथात्मनः प्रकाशो द्योतत इति द्योतयति

अनुष्टुप्-वृत्तम्

अतः शुद्धनयायत्तं प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत् ।
नवतत्त्वगतत्वेऽपि यदेकत्वं न मुञ्चति ॥७॥

अथात्मैव दृश्य इति प्रेरयति

मालिनी-वृत्तम्

चिरमिति नवतत्त्वच्छन्नमुन्नीयमानम्,
कनकमिव निमग्नं वर्णमालाकलापे ।
अथ सततविविक्तं दृश्यतामेकरूपम्,
प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम् ॥८॥

निचली भूमिका वालों के लिए व्यवहार नय की उपयोगिता बतलाकर निश्चयनय की उपादेयता बतलाते हैं—

मुक्तक छन्द

प्रारम्भ अवस्था में यद्यपि, जो भी अपना पग धरता है ।
कुछ खेद सहित व्यवहार जु नय का हस्तालम्बन लेता है ।।
फिर भी पर से पर भिन्न मात्र है चमत्कार चैतन्य जहाँ ।
अन्तर्दर्शन होते ही नय व्यवहार न किञ्चित् कार्य वहाँ ।।५।।

अब आत्मा के एकत्व का विस्तार करते हैं—

मुक्तक छन्द

एकत्व नियत आत्मा यथार्थ, से गुण पर्यय में व्याप्त रहा ।
है पूर्णज्ञान घन रूप सर्व, द्रव्यों से भिन्न स्व देख रहा ।।
ये ही सम्यग्दर्शन निश्चित, आत्मा को तावन्मात्र कहो ।
नव तत्त्व सन्तति को तजकर मम शुद्ध आत्म की प्राप्ती हो ।।६।।

अब आत्मज्योति प्रकट होती है ऐसा बतलाते हैं—

मुक्तक छन्द

अतः शुद्ध नय के जो आश्रित प्रत्यग् ज्योति विकास हुआ ।
निज के स्वभाव में रम कर ही, पर से निज गुण को पृथक् किया।।
जो आत्मज्योति पर के कारण, नव तत्त्व संग में मिली रही ।
तो भी चेतन लक्षण स्वरूप एकत्वपने को तजे नहीं ।।७।।

आत्मज्योति ही उद्योतमान है—ऐसी प्रेरणा करते हैं—

मुक्तक छन्द

जिस तरह वर्णमाला कलाप में स्वर्ण निमग्न रहा जानो ।
यह आत्मज्योति वैसे हि नित्य, तत्त्वों के मध्य छिपी मानो ।।
सब द्रव्यों से जो भिन्न सदा, है एक रूप चेतन देखो ।
हर पर्यायों में आत्मज्योति, चिच्चमत्कार भासित लेखो ।।८।।

अथ परं ज्योतिषी प्रकाशिते सति नयादीनां वैय्यर्थ्यं स्पष्टयति—

मालिनी-वृत्तम्

उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणम्
क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेप चक्रम् ।
किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वंकषेऽस्मिन्
अनुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव ॥९॥

अथ स्वात्मस्वभावं प्रकाशयन्तं शुद्धनयं व्यनक्ति—

उपजाति-वृत्तम्

आत्मस्वभावं परभावभिन्न-
मापूर्णमाद्यन्तविमुक्तमेकम् ।
विलीन संकल्पविकल्पजालं
प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युदेति ॥१०॥

अथात्मनोऽनुभवनं भावयति—

मालिनी-वृत्तम्

नहि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी
स्फुटमुपरि तरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम् ।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्तात्
जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम् ॥११॥

अथ पूर्वापरबन्धविनाशकत्वेनात्मानमुद्बोधयति—

शार्दूलविक्रीडितं-वृत्तम्

भूतं भान्तमभूतमेव रभसान्निर्भिद्य बन्धं सुधीः
यद्यन्तः किल कोऽप्यहो कलयति व्याहत्य मोहं हठात् ।
आत्मात्मानुभवैकगम्यमहिमा व्यक्तोऽयमास्ते ध्रुवं
नित्यं कर्मकलङ्कपङ्कविकलो देवः स्वयं शाश्वतः ॥१२॥

अब उस परमज्योति के प्रकाशित होने पर नयादिकों की व्यर्थता स्पष्ट करते हैं—

वसन्ततिलका छन्द

ज्यों सूर्य का उदय ही तम पुञ्ज नाशे
त्यों आत्मतेज परभाव सभी विनाशे।
निक्षेप चक्र नय श्री न प्रभा कहाई
आत्मानुभूति परद्वैत प्रकाश नाहीं ।।९।।

अब स्वात्म स्वभाव को प्रकाशित करने वाले शुद्धनय को व्यक्त करते हैं—

वसन्ततिलका छन्द

आत्म स्वभाव परभाव सु-भिन्न ही है
जो पूर्ण रूप सु अनादि अनन्त भी है।
है निर्विकल्प इकरूप विकल्प नाशे
वो शुद्धदृष्टि परमातम को प्रकाशे ।।१०।।

अब आत्मा के अनुभवन की भावना करते हैं—

वसन्ततिलका छन्द

रागादि भाव परमातम में तिरे हैं
सम्मान प्राप्त नहि हो फिर भी मिले हैं।
मोही जगत् तज विमोह प्रकाश में हो
ये आत्म भाव धर ले जल तेल सम हो ।।११।।

अब पूर्वापर बंध विनाशकता से आत्मा को उद्‌बोधित करते हैं—

हरिगीतिका छन्द, मात्रिका

जो शीघ्र विज्ञ त्रिकाल सम्बन्धी जु बन्धन भेदता
बल पूर्व मोह विनष्ट कर निज में हि निज को देखता।
नित आत्म, अनुभव गम्य महिमा, व्यक्त शाश्वत धीर है
ऐसा जु कर्म कलंक रूपी पंक रहित स्व देव है ।।१२।।

अथात्मानुभूतिमेव समर्थयति—

वसन्ततिलका वृत्तम्

आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या
ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्ध्वा।
आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकंप-
मेकोऽस्ति नित्यमवबोधघनः समन्तात् ॥१३॥

अथ परमात्मस्वरूपप्रकाशनं नः आशास्ति—

पृथ्वी-वृत्तम्

अखण्डितमनाकुलं ज्वलदनन्तमन्तर्बहि-
र्महः परममस्तु नः सहजमुद्विलासं सदा।
चिदुच्छलननिर्भरं सकलकालमालम्बते
यदेकरसमुल्लसल्लवणखिल्यलीलायितम् ॥१४॥

अथ तस्यैवोपासनं संधत्ते

अनुष्टुप्-वृत्तम्

एव ज्ञानघनो नित्यमात्मा सिद्धिमभीप्सुभिः।
साध्यसाधकभावेन द्विधैकः समुपास्यताम् ॥१५॥

अथात्मनस्त्रित्वमेकत्वमाह—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रित्वादेकत्वतः स्वयं।
मेचकोऽमेचकश्चापि सममात्मा प्रमाणतः ॥१६॥

अब आत्मानुभूति का ही समर्थन करते हैं—

हरिगीतिका छन्द

जो शुद्ध नय से आत्म अनुभव ज्ञान वैभव है यही ।
है गुण गुणी में भेद संज्ञा वस्तु भेद कभी नहीं ॥
जो विज्ञ जन निज में हि निज को धार निश्चल ध्यावते ।
सब ओर से नित ज्ञान-घन इक शुद्धरूप हि भासते ॥१३॥

अब आचार्य परमात्मस्वरूप की प्राप्ति की भावना करते हैं—

हरिगीतिका छन्द

जो मुकुरवत् सब ज्ञेय के आकार से खंडित नहीं ।
अतिशय अनाकुल जो अनंतहि ज्योति अन्तर बाह्य भी ॥
अरु लवण डलि सम पूर्ण निज रस, नित्य जो आलम्बनो ।
विज्ञान शोभित वह सहज मम, परम तेज प्रकाशनो ॥१४॥

अब ज्ञानस्वरूप आत्मा की उपासना करने का उपदेश देते हैं—

वसन्ततिलका छन्द

जो भी मुमुक्षुजन पूर्ण सु शान्ति चाहें
वो आत्म ज्ञानघन को नित खूब ध्यावें ।
जो साध्य-साधक द्विभेद सदा कहा है
वो शुद्धदृष्टि इक आतम को लहा है ॥१५॥

दोहा

सिद्ध अवस्था जो लहे, साध्य उसे ही जान ।
रत्नत्रय की साधना, साधक वही महान ॥

अब आत्मा के भेद और अभेद का वर्णन करते हैं—

वसन्ततिलका छन्द

चारित्र ज्ञान दृग, ये व्यवहार से हैं
सो द्रव्यदृष्टि इक चेतन ही कहे हैं ।
जो एक नेक नय, भेद सदा करे है
वो एक काल सब भेद प्रमाण से है ॥१६॥

अथ मेचकामेचकत्वमात्मनः पद्यद्वयेन विवृणुते—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रिभिः परिणतत्वत ।
एकोऽपि त्रिस्वभावत्वात् व्यवहारेण मेचकः ॥१७॥

अनुष्टुप् वृत्तम्

परमार्थेन तु व्यक्त—ज्ञातृत्व ज्योतिषैककः ।
सर्वभावान्तरध्वंसि स्वभावत्वादमेचकः ॥१८॥

अथात्मनः साध्यं प्रतिफलते—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

आत्मनश्चिन्तयैवालं मेचकामेचकत्वयोः ।
दर्शनज्ञानचारित्रैः साध्यसिद्धिर्न चान्यथा ॥१९॥

अथात्मनस्त्रित्वैकत्वाभ्यामभिन्नत्वेन सर्वमुपपनीपद्यते—

मालिनी वृत्तम्

कथमपि समुपात्तत्रित्वमप्येकताया-
अपतितमिदमात्म ज्योतिरुद्गच्छदच्छम् ।
सततमनुभवामोऽनन्तचैतन्यचिह्नं
न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः ॥२०॥

दोहा

एक अंश को जो गहे, सो नय कहे महान ।
सर्व अर्थ को जो लहे, सो ही कहे प्रमाण ॥

अब आत्मा के एकरूपता और अनेकरूपता का दो श्लोकों में वर्णन करते हैं—

वसन्ततिलका छन्द (वर्णिक)

त्यों व्यक्ति एक पर्याय अनेक भी है ।
वालापने तरुण वृद्ध प्रभेद भी है ॥
ज्यों जीव एक त्रय मेचक रूप भी है ।
रत्नत्रयी परिणमे व्यवहार ही है ॥१७॥

वसन्ततिलका छन्द (वर्णिक)

जो आत्मज्योति इक ही परमार्थ से है ।
वो व्यक्त ज्ञातृपन से निजरूप में है ॥
जो सर्वभावपन ध्वंसि स्वभाव ज्ञाता ।
आत्मा अमेचक सदा इक ही विधाता ॥१८॥

अब आत्मा के साध्य का वर्णन करते हैं—

वसन्ततिलका छन्द (वर्णिक)

सम्बन्ध मेचक अमेचक आतम से है ।
चिन्ता तजी यह विकल्प सदा करे है ॥
जो साध्य-सिद्धि दृग ज्ञान चरित्र से है ।
वो आत्मसिद्धि नहिं अन्य प्रकार से है ॥१९॥

अब व्यवहार से तीन रूप होकर भी निश्चय से एक रूप आत्मा के अनुभव से ही साध्य सिद्धि होती है-ऐसा बताते हैं—

शेर छन्द (मात्रिक)

जो तीन रूप प्राप्त एक रूप च्युत नहीं ।
जो स्वच्छ उदय रूप, नंत चित् स्वरूप ही ॥
यह आत्मज्योति अनुभव में नित्य हम लहें ।
जो साध्य-सिद्धि क्योंकि अन्य रूप नहि कहें ॥२०॥

अथ तल्लाभलम्भनं स्तौति—

मालिनी-वृत्तम्

कथमपि हि लभन्ते भेदविज्ञानमूला-
मचलितमनुभूतिं ये स्वतो वान्यतो वा ।
प्रतिफलननिमग्नानन्तभावैः स्वभावै—
र्मुकुरवदविकारा सन्ततं स्युस्त एव ॥२१॥

अथ मोहादोनस्यति—

मालिनी-वृत्तम्

त्यजतु जगदिदानीं मोहमाजन्मलीढं—
रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत् ।
इह कथमपि नात्मानात्मना साकमेकः—
किल कलयति काले क्वापि तादात्म्यवृत्तिम् ॥२२॥

अथ मोहहापनार्थं देहहापनं स्थापयति—

मालिनी-वृत्तम्

अयि ! कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्
अनुभव भव मूर्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्त्तम् ।
पृथगथ विलसन्तं स्वं समालोक्य येन
त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम् ॥२३॥

ननु शरीरमेवात्मा, तद्व्यतिरिक्तस्य कस्य चिदात्मनोऽनुपलभ्यमानत्वात् । अन्यथा महामुनीनां तीर्थंकरशरीराद्यतिशयवर्णनानुपपत्तिरिति युक्तिमुद्भाव्य भिन्नात्मवादिनं योगिनं प्रति कश्चिद् प्रति बुद्धः शिष्य इति पद्यमुत्प्लवते—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

कान्त्यैव स्नपयन्ति ये दश दिशो धाम्ना निरुन्धन्ति ये ।
धामोद्दाममहस्विनां जनमनो मुष्णन्ति रूपेण ये ।
दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात् क्षरन्तोऽमृतं ।
वन्द्यास्तेऽष्टसहस्रलक्षणधराः तीर्थेश्वराः सूरयः ॥२४॥

अब आत्मानुभव की प्राप्ति का स्तवन करते हैं—

शैर छन्द (मात्रिक)

जो व्यक्ति स्वयं अन्य के उपदेश यत्न से ।
निज भेद ज्ञानमूल निश्चल अनुभव लहे ।।
वे संत निज में नंत भाव प्रतिफलित किये ।
दर्पण समान फिर भी निर्विकार ही रहे ।।२१।।

अब विकारी भावों के जनक मोह को दूर करने का उपदेश देते हैं—

शैर छन्द (मात्रिक)

आजन्म व्याप्त मोह इसे तज दो बन्धुओं ।
मुमुक्ष जन रोचक विज्ञान का हि स्वाद लो ।।
त्रैलोक्य में त्रिकाल में किसी प्रकार से ।
तादात्म्यरूप आत्म अनातम न इक कहे ।।२२।।

अब मोह छोड़ने के लिए देह से मोह त्यागने का उपदेश देते हैं—

शैर छन्द (मात्रिक)

हे भव्य तू किसी तरह सह कर हि दुख उठा ।
तत्त्वों का बन कुतूहली इक पल शरीर का ।।
कुटुम्ब बनकर आत्म अनुभव कर जभी पृथक् ।
कर आत्मदर्श एकपन के तन का मोह तज ।।२३।।

स्तुति में आचार्यो ने कहा है—

सवैया छन्द ८ भगण (वर्णिक छन्द)

कांतिय से दश ही सुदिशाहि, पवित्र करें भव ताप निकंदन ।
तेजहि से रवि ज्योति निवार, सुरूपहि से भवि का मनरंजन ।।
जो अपनी ध्वनि से भवि को, श्रुत अमृत वृष्टि करें सुख कन्दन ।
एक जु आठ सहस्र सुलक्षण, युक्त सुदेव उन्हें शत वंदन ।।२४।।

अथ कथं कान्त्येत्यादिशरीरस्तवनेन तदधिष्ठातृत्वादात्मनो निश्च-येन स्तवनं न युज्यते इत्युक्ते प्रत्युत्तरयति पद्यद्वये—

प्राकारकवलिताम्बरमुपवनराजीवनिगीर्णभूमितलम् ।
पिबतीव हि नगरमिदं परिखावलयेन पातालम् ॥२५॥

नित्यमविकारसुस्थितसर्वाङ्गमपूर्वसहजलावण्यम् ।
अक्षोभमिव समुद्रं जिनेन्द्ररूपं परं जयति ॥२६॥

यद्येवं तीर्थकराचार्यस्तुतिः समस्ताप्यप्रशस्ता स्यात् । ततः शरीरा-त्मनोरैकान्तिकी प्रतिपत्तिः ? नैवं नयविभागाभावात् । तं नयमुल्लेखयति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

एकत्वं व्यवहारतो न पुनः कायात्मनोर्निश्चयात् ।
नुः स्तोत्रं व्यवहारतोऽस्ति वपुषः स्तुत्या न तत्तत्त्वतः ।
स्तोत्रं निश्चयतश्चितो भवति चित्स्तुत्यैव सैवं भवेत् ।
नातस्तीर्थकरस्त्वोत्तरवलादेकत्वमात्माङ्गयोः ॥२७॥

अथैकत्वनिरासमुपसंहरति—

मालिनी वृत्तम्

इति परिचिततत्त्वैः आत्मकायैकतायां
नयविभजनयुक्त्यात्यन्तमुच्छादितायाम् ।
अवतरति न बोधो बोधमेवाद्य कस्य
स्वरसरभसकृष्टः प्रस्फुटन्नेक एव ॥२८॥

अब कान्ति आदि के द्वारा शरीर के स्तवन से उसमें विद्यमान आत्मा का निश्चय से स्तवन क्यों नहीं होता इसके प्रत्युत्तर रूप में दो पद्य प्रस्तुत हैं—

सवैया छन्द ८ भगण (किरीट सवैया) वर्णिक

जो अपने पर कोटहि से नभ को स्पर्श करे मनरंजन ।
औरहि बाग बगीचहिं से पृथ्वी तल व्याप्त करें सुखकन्दन ॥
सो यह ही नगरी परिखाहि, सुचक्रहि से अद्भुत भयभंजन ।
मानहिं लोग जने इसको हि अधो तल को हि पिये पुरपट्टन ॥२५

अब तीर्थंकर के शरीर का स्तवन करते हैं—

सवैया छन्द ८ भगण (किरीट सवैया) वर्णिक

नित्य रहें जिसमें सब अंगहि, सुस्थित है अविकार निरंजन ।
क्षोभ नहीं जिस भाँति समुद्र समान दिखे भवताप निकन्दन ॥
है जिसका हि स्वभाविक सुन्दरता सु अपूर्व रहे मनरंजन ।
सो हि जिनेन्द्रहि सुंदर रूप, सदा जयवंत रहे दुख भंजन ॥२६

अब आत्मा और शरीर का नय विभाग से एक और अनेकपने का वर्णन करते हैं—

मुक्तक छन्द (मात्रिक)

आत्मा शरीर में एकपना, व्यवहार कहे नहिं निश्चय से ।
तन संस्तुति से आत्मा संस्तुति, निश्चय न कहे व्यवहारहि से ॥
निश्चय से आत्मा की संस्तुति, है आत्मगुणों से हो जब भी ।
उस जिन स्तुति से देह आत्म, में एकपना नहिं सिद्ध कभी ॥२७

अब आत्मा और शरीर के एकत्व का निराकरण करते हैं—

मुक्तक (मात्रिक) छन्द

इस तरह तत्त्व के अभ्यासी मुनियों द्वारा नय विभाग कर ।
आत्म देह के एकपने को बिल्कुल करते हैं निराकरण ।
तब स्वरस वेग से खिंच करके जब एक स्वरूपहि प्रकट हुआ ।
फिर किसका विज्ञान प्रतिष्ठित ज्ञान में नहीं अवतीर्ण हुआ ॥२८

अथ यावत्पर्यन्तं परभावाभावस्तावत्स्वानुभव इति संतन्यते—

मालिनी-वृत्तम्

अवतरति न यावत् वृत्तिमत्यन्तवेगा–
दनवमपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टिः।
झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता
स्वयमिय मनुभूतिस्तावदाविर्बभूव ॥२९॥

अथ स्वरतं रसामीति रचयति—

स्वागता-वृत्तम्

सर्वतः स्वरसनिर्भरभावं
चेतये स्वयमहं स्वमिहैकम्।
नास्ति नास्ति मम कश्चन मोहः
शुद्धचिद्घनमहोनिधिरस्मि ॥३०॥

अथात्मपरद्रव्ययोर्विवेकं तंतन्यते—

मालिनी-वृत्तम्

इति सति सह सर्वैरन्यभावैर्विवेके
स्वयमयमुपयोगो विभ्रदात्मानमेकं।
प्रकटितपरमार्थैर्दर्शन-ज्ञान-वृत्तैः
कृतपरिणतिरात्माराम एव प्रवृत्तः ॥३१॥

अब ज्ञानसमुद्रे मज्जनादिना जगदुद्युज्यते—

वसंततिलका वृत्तम्

मज्जन्तु निर्भरममी सममेव लोकाः
आलोकमुच्छलति शान्तरसे समस्ताः।
आप्लाव्य विभ्रमतिरस्करिणीं भरेण
प्रोन्मग्न एष भगवानवबोध सिन्धुः ॥३२॥

॥ पूर्वरंग समाप्त : ॥

जब तक परभाव का अभाव है तब तक स्वानुभव है—यह कहते हैं—

मुक्तक (मात्रिक) छन्द

जो क्रूर सभी पर भाव त्याग के लिये अहो ! दृष्टान्त दिया।
है वहाँ दृष्टि अत्यन्त वेग जब तक प्रवृत्ति नहिं प्राप्त किया।
यह तब तक अन्य सर्व भावों से, रहित सदा अनुभूति कही।
वह शीघ्र स्वयं निज के द्वारा, निज में ही निज को प्रकट हुई ॥२९

निजानन्द का अनुभव करता हूँ—यह कहते हैं—

मुक्तक (मात्रिक) छन्द

जो सभी ओर से स्वरस रूप, चैतन्य भाव से भरा कहूँ।
इस लोक में एक आत्म रूप का, स्वयं हि अनुभव करता हूँ।
कोई भी मोह न मेरा है, नहिं मेरा है निश्चय जानूँ।
दर्पण समान चैतन्य रूप, मैं शुद्ध तेज का पुंजहि हूँ ॥३०

अब आत्मा और पर द्रव्य के भेद का वर्णन करते हैं—

मुक्तक (मात्रिक) छन्द

जो इस प्रकार से अन्य सभी, भावों के साथहि भेद हुआ।
आत्मा का यह उपयोग स्वयं, इक आत्मरूप को प्राप्त हुआ।
जिनका परमार्थ स्वरूप प्रकट, ऐसे दृग ज्ञान चरित्र कहे।
जो उन्हीं रूप से परिणत कर, निज उपवन में ही रमण करें ॥३१

अब जगत् के जीवों को ज्ञानरूपी समुद्र में निमग्न होने का उपदेश देते हैं—

मुक्तक (मात्रिक) छन्द

मिथ्यात्व रूप परदा को निज, शक्ती पूर्वक जब दूर किया।
यह जिन भगवन विज्ञान रूप, सागर तब ही प्रकट हुआ ॥
आलोक सहित उच्छलन शान्त, रस में समस्त जो प्राणि कहें।
वे एक साथ अतिशय स्वरूप, स्फटिक सम शुद्ध निमग्न रहें ॥३२

पूर्व रंग समाप्त

जीवाजीवाधिकार

■ ■

अथ जीव-अजीवाधिकार

अथ ज्ञानविलासमाख्याति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

जीवाजीवविवेकपुष्कलदृशा प्रत्याययत्पार्षदान्
आसंसारनिबद्धबन्धनविधिध्वंसात् विशुद्धं स्फुटत् ।
आत्माराममनन्तधाम महसाध्यक्षेण नित्योदितं
धीरोदात्तमनाकुलं विलसति ज्ञानं मनोऽऽल्हादयत् ॥३३॥

अथ परविवेकेनोत्साहयति—

मालिनी-वृत्तम्

विरम किमपरेणाऽकार्यकोलाहलेन
स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकम् ।
हृदयसरसि पुंसः पुद्गलाद् भिन्नधाम्नो
ननु किमनुपलब्धिर्भाति किं चोपलब्धिः ॥३४॥

अथ सकलद्रव्य व्यत्तिरिक्तमात्मद्रव्यं विचकास्ति—

मालिनी-वृत्तम्

सकलमपि विहायाह्नाय चिच्छक्तिरिक्तं
स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रम् ।
इममुपरि तरन्तं चारु विश्वस्य साक्षात्,
कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनन्तम् ॥३५॥

अथ चेतनाचेतने विभजति—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारो जीव इयानयम् ।
अतोऽतिरिक्ताः सर्वेऽपि भावाः पौद्गलिका अमी ॥३६॥

जीव-अजीव-अधिकार

अब भेद विज्ञान की प्रशंसा करते हैं—

मुक्तक छन्द (मात्रिक)

जो जीव अजीव प्रभेद दिखाकर बहुल दृष्टि से सांसद को ।
जो भिन्न द्रव्य स्व प्रतीत कराकर, दूर करें जग बन्धन को ।।
जो शुद्ध व्यक्त प्रत्यक्ष तेज से उदित आतम में रमण किया ।
नित्यादिक मन विकसित करने वाला यह ज्ञान हि प्रकट हुआ ।।

अब आत्मोपलब्धि का उपाय बताते हैं—

मुक्तक (मात्रिक) छन्द

हे भव्य ! ठहर सब भिन्न व्यर्थ कोलाहल में क्यों है तत्पर ।
तू स्वयं हि निश्चल होकर छह महिने तक निज अवलोकन कर ।।
फिर देख कि पुद्गल से विभिन्न है तेज रूप निज आतम की ।
उस अन्तर हृदय सरोवर में उपलब्धि हुई या नहींहुई ।। ३४।।

अब सर्व द्रव्यों से भिन्न आत्म द्रव्य का वर्णन करते हैं—

सवैया मत्तगयंद छन्द वर्ण २३ (वर्णिक छन्द) ७भगण२ गुरु

हे भवि जीव सुचेतन शक्ति, सुरिक्त सभी परभावहिं त्यागो ।
सो उस आतम शक्ति स्वभाव, विशुद्धपने अवगाहन साधो ।।
सर्व त्रिलोकहिं ऊपर शीघ्र भ्रमन करके निज को पहिचानो ।
औ परमात्म अनंत निजातम को निज में अनुभूति पिछानो ।।

अब जीव और अजीव का विभाग करते हैं—

आर्या (मात्रिक) छन्द

चैतन्य शक्ति पूर्णं सर्वस्व सार सो मात्र यह जीव ।
याते विभिन्न भावहिं सब हो है पौद्गलिक रूपी ।।३६।।

अथ वर्णादीनां विविक्तं वंभण्यते—

मालिनी-वृत्तम्

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा
भिन्ना भावा सर्व एवास्य पुंसः ।
तेनैवान्तस्तत्त्वतो पश्यतोऽमी
नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात् ॥३७॥

अथ पुद्गलेन निर्वृत्तस्य पौद्गलिकत्वं पिपर्ति—

उपजाति-वृत्तम्

निर्वर्त्यते येन यदत्र किंचित्—
तदेव तत्स्यान्न कथञ्चनान्यत् ।
रुक्मेण निर्वृत्तमिहासिकोशं—
पश्यंति रुक्मं न कथञ्चनासिम् ॥३८॥

अथ वर्णादीनां पौद्गलिकत्वं पूरयति—

उपजाति-वृत्तम्

वर्णादिसामग्र्यमिदं विदन्तु
निर्माणमेकस्य हि पुद्गलस्य ।
ततोऽस्त्विदं पुद्गल एव नान्यो
यतः स विज्ञानघनस्ततोऽन्यः ॥३९॥

अथ जीवानां वर्णादि प्रतिपादनं मिथ्येति मथ्नाति—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

घृतकुम्भाभिधानेऽपि कुम्भो घृतमयो न चेत् ।
जीवो वर्णादिमज्जीवो जल्पनेऽपि न तन्मयः ॥४०॥

ननु वर्णादीनां रागादीनां च जीवत्वाभावे को जीव इति वावच्यते—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

अनाद्यनन्तमचलं स्वसंवेद्यमबाधितम् ।
जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ॥४१॥

अब आत्मा से वर्णादिक का भिन्नपना दिखाते हैं—

आर्या (मात्रिक) छन्द

वर्णादिक रागादिक ये आत्म भिन्न भाव सब ही हैं।
परमार्थ स्वावलोकन में ही निज तत्त्व दिखता है ॥३७॥

अब पुद्गल से उत्पन्न पुद्गल है यह वर्णन करते हैं—

आर्या (मात्रिक) छन्द

जो वस्तु जिससे रचित, वह उस रूप पररूप न हुई है।
जैसे स्वर्ण विनिर्मित असि कोष स्वर्ण असि नहिं है ॥३८॥

वर्णादिक पुद्गल रूप है—यह वर्णन करते हैं—

आर्या (मात्रिक) छन्द

वर्णादिक सामग्री, एक पुद्गल निर्माण सो जानो।
अतएव सर्व पुद्गल, ज्ञान रूप आतम पहिचानो ॥३९॥

जीव के वर्णादि कहना मिथ्या है—ऐसा वर्णन करते हैं—

आर्या (मात्रिक) छन्द

यथा घृत कुम्भ नामहि, कुम्भ घृत रूप कभी न हो सकता।
तथा वर्णादि आत्मा, वर्णादिकमय न हो सकता ॥४०॥

वर्णादि तथा रागादि जीव नहीं है तो जीव क्या है ? यहां जीव का वर्णन करते हैं—

आर्या (मात्रिक) छन्द

अनादि अनन्त निश्चल, जो स्वानुभव प्रकट चेतन स्वरूप।
जीव स्वयं दीपकवत् प्रकाशमान अतिशय स्वरूप ॥४१॥

अथाजीवभेदं विकाश्य जीवतत्त्वमालम्बते—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

वर्णाद्यैः सहितस्तथा विरहितो द्वेधाऽस्त्यजीवो यतो
नामूर्तत्वमुपास्य पश्यति जगज्जीवस्य तत्त्वं ततः
इत्यालोच्य विवेचकैः समुचितं नाव्याप्त्यतिव्यापि वा
व्यक्तं व्यञ्जितजीवतत्त्वमचलं चैतन्यमालम्ब्यताम् ॥४२॥

अथ जीवाजीवयोर्भिन्नत्व मनुभवति—

वसन्ततिलका-वृत्तम्

जीवादजीवमिति लक्षणतो विभिन्नं
ज्ञानी जनोऽनुभवति स्वयमुल्लसन्तम् ।
अज्ञानिनो निरवधि प्रविजृम्भितोऽयं
मोहस्तु तत्कथमहो बत नानटीति ॥४३॥

अथाविवेकनाट्ये नटनपटुतां प्रकटयति—

वसंततिलका-वृत्तम्

अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाट्ये
वर्णादिमान् नटति पुद्गल एव नान्यः ।
रागादि पुद्गलविकारविरुद्ध-शुद्ध—
चैतन्यधातुमयमूर्तिरयं च जीवः ॥४४॥

अथोपसंहारमाजेह्रीयते—

मन्दाक्रान्ता-वृत्तम्

इत्थं ज्ञानक्रकचकलनापाटनं नाटयित्वा
जीवाजीवौ स्फुटविघटनं नैव यावत्प्रयातः ।
विश्वं व्याप्य प्रसभविकसद् व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या
ज्ञातृद्रव्यं स्वयमतिरसात्तावदुच्चैश्चकाशे ॥४५॥

इति जीवाजीवाधिकारः समाप्तः

चैतन्य ही जीव का निर्दोष लक्षण है–यह दर्शाते हैं—

नरेन्द्र (जोगीरासा) छन्द (मात्रिक)

रूप रसादिक सहित सुविरहित, द्विविध अजीव कहे हैं।
अमूर्तित्व गुण को निज में ही, व्यर्थहि ध्यान करे हैं ।।
अतः विवेचन कर गुरु ने इक, चेतन जीव कहे हैं।
सर्व दोष से रहित प्रकट निज, चेतन अचल रहे हैं ।।४२।।

जीव और अजीव के भिन्नपने का अनुभव दर्शाते हैं—

नरेन्द्र (जोगीरासा) छन्द (मात्रिक)

जीव-अजीव स्व लक्षण से है, भिन्न-भिन्न तुम जानो।
ज्ञानी जन ही स्वयं हि अनुभव, करते निश्चित मानो ।।
अज्ञानी जन मोह बुद्धि से, अतिशय नृत्य करे हैं।
खेद अहो आश्चर्य जभी यह, भव भव में हि भ्रमे हैं ।।४३।।

इस अविवेक पूर्ण नृत्य में पुद्गल ही नृत्य करता है ऐसा कहते हैं—

नरेन्द्र (जोगीरासा) छन्द (मात्रिक)

इस घट में जो अनादि विशाल, अज्ञ नाटय शाला है।
वर्णादिक पुद्गल कर नृत्य न और कछू दिखता है ।।
रागादिक पुद्गल विकार से, भिन्न विशुद्ध दशा है।
अरु चैतन्य स्वरूप मूर्ति सो, ऐसा जीव जुदा है ।।४४।।

भेद ज्ञान से ही ज्ञायक आत्मदेव प्रकट होता है–यही कहते हैं—

नरेन्द्र (जोगीरासा) छन्द (मात्रिक)

ऐसा ज्ञान करोंत क्रिया से, विज्ञ ! समान पृथक कर।
जब तक जीव अजीव स्पष्ट से शीघ्र नहीं विघटन कर ।।
तब तक अतिशय विकसित, व्यक्त हि चेतन शक्ति कही जो।
विश्व व्याप्त कर ज्ञाता द्रव्यहि, जीव प्रकाशित है वो ।।४५

जीवाजीवाधिकार समाप्त

जीवाजीवाधिकार का सार

भगवान् श्रीकुंदकुंददेव ने समयसार में शुद्ध आत्मा का निरूपण किया है। इसके टीकाकार श्री अमृतचन्द्रसूरि ने अपनी वाणी से अमृत को झराते हुए ही के समान टीका में कुछ ऐसे काव्य रचे हैं जिनको उन्होंने स्वयं ही "कलश" संज्ञा दी है। जैसे मंदिर पर कलश चढ़ा देने से ही उसकी शोभा होती है उसी प्रकार से समयसार ग्रन्थराज के ऊपर भी उसके ये काव्य "कलश" की उपमा को प्राप्त हैं।

श्री अमृतचन्द्रसूरि ने सर्वप्रथम "समयसार" स्वरूप शुद्ध आत्मा को नमस्कार किया है। आगे सर्वत्र शुद्धनय की प्रधानता से ही आत्मा के अनुभव करने का उपदेश दिया है। और पाँचवें काव्य में कहा है कि यद्यपि व्यवहारनय पहली सीढ़ी पर पैर रखने वालों के लिये हाथ के अवलम्बन के समान है फिर भी अन्तर में चिच्चैतन्य स्वरूप आत्मा को देखने वालों के लिए यह व्यवहारनय कुछ भी नहीं है। इस काव्य से व्यवहारनय की उपयोगिता भी स्पष्ट है क्योंकि शुद्ध आत्मा का अनुभव तो शुद्धोपयोगी मुनि को ही हो सकता है अतः उसके पूर्व अविरतसम्यग्दृष्टि, श्रावक और सरागी मुनि के लिये व्यवहारनय प्रयोजनीभूत ही है। आगे नवमें काव्य में इसी बात को स्पष्ट किया है कि "जब एकमात्र शुद्ध आत्मा का अनुभव आता है उस समय नय, प्रमाण और निक्षेप का विकल्प भी नहीं रहता है।" अर्थात् इसी का नाम निर्विकल्प ध्यान है। आगे १६, १७, १८, १९, २०, काव्यों में यही स्पष्ट किया है कि दर्शनज्ञान चारित्ररूप भेदरत्नत्रय साधन है और तीनों की एकतारूप अभेदरत्नत्रय जो कि शुद्धात्मा है वही साध्य है। यह अभेदरत्नत्रय निर्विकल्प आत्मानुभव में ही होता है। २२ वें काव्य में आचार्य देव ने भव्यों को प्रेरणा देते हुए कहा है कि "हे जगत् के जीवों! अनादिकाल से लगे हुए इस मोह को तो छोड़ो और सुन्दर ज्ञान का अनुभव करो क्योंकि इस संसार में यह आत्मा पुद्गल के साथ

कभी भी तादात्म्य सम्बन्ध को प्राप्त नहीं हुआ है। पुनरपि प्रेरणा देते हुए कहा है कि "अयि भव्यात्मन् ! तू जैसे बने वैसे तत्त्वों का कुतूहली बन और एक मुहूर्त के लिये ही क्यों न हो इस शरीर को अपना पड़ोसी जैसा मानकर अनुभव कर पुनः ज्ञानपुंज अपनी आत्मा का अवलोकन करते हुए मूर्तिक शरीर आदि के साथ एकत्व बुद्धि को छोड़। इसी में यह भी बतलाया है कि व्यवहारनय की प्रधानता से ही शरीर के वर्णादि की विवक्षा से अर्हन्त, आचार्य देव आदि की स्तुति होती है और निश्चयनय से चिच्चैतन्यस्वरूप आत्मा की स्तुति होती है।

इस जीवाजीवाधिकार में प्रारम्भ से लेकर ३२ कलश काव्यों तक तो "रंगभूमि" संज्ञा दी है। आगे जीवाजीव को पृथक् करने वाले ऐसे ज्ञान का अवलंबन लेने को कहा है। इसी बात को ३४ वें काव्य में कहा है कि "हे भव्य ! तू व्यर्थ के यद्वा तद्वा कार्य के कोलाहल से विरक्त हो और स्थिर होकर छह मास तक अपने हृदयरूपी सरोवर में पुद्गल से भिन्न शुद्ध अपनी आत्मा को ही देख। फिर देख तुझे आत्मतत्त्व की उपलब्धि होती है या नहीं।" अर्थात् अवश्य ही होगी। पुनः वर्णादि और रागादि से भिन्न शुद्ध आत्म तत्त्व के अनुभव हेतु प्रेरणा देते हुए अनेक उदाहरणों से उसी बात को दृढ़ करते हुए कहा है कि "भाई ! जीव से अजीव लक्षण से भिन्न है फिर भी ज्ञानी जन ही उसका अनुभव कर सकते हैं अज्ञानी-जन नहीं, यहाँ पर ज्ञानी शब्द से निर्विकल्प ध्यान में स्थित महामुनि ही विवक्षित हैं क्योंकि इसके पूर्व तो शुद्ध आत्मा का श्रद्धान ही माना गया है। इस विषय को श्री जयसेनाचार्य ने अपनी टीका में स्थल-स्थल पर स्पष्ट किया हुआ है। इस प्रकार से इस "जीवाजीवाधिकार" को पूर्ण करते हुए अंत में उपसंहार रूप से भी अमृतचन्द्रसूरि कहते हैं कि "ज्ञान-रूपी" करोंत के द्वारा जीव और अजीव को पृथक् करना है तो इस करोंत को तब तक चलाते रहना चाहिए कि जब तक यह चिच्चैतन्य स्वरूप आत्मा पर से सर्वथा पृथक् होकर सिद्ध-शुद्ध अवस्था को न प्राप्त हो जाये। अर्थात् अविरत-सम्यग्दृष्टि अवस्था से सरागी मुनि तक मैं भिन्न हूँ शरीर भिन्न है। इस प्रकार भेदज्ञान की भावना करते रहना चाहिए। एक समय ऐसा आयेगा कि जब निर्विकल्प ध्यान में वह भेदविज्ञान स्थिर हो जायेगा और आगे श्रेणी में शरीर आदि से पृथक् मात्र आत्मा का ही अनुभव आने लगेगा पुनः ऊपर की अवस्था में पहुँच कर स्वयं ही यह आत्मा शरीर से रहित अशरीरी हो जावेगा। इस प्रकार इस अधिकार में ४५ कलश काव्य हैं।

कर्तृकर्माधिकार

■ ■

कर्तृकर्माधिकारः

अथ जीवाजीवौ कर्तृकर्मभावेन वाभाति—

मन्दाक्रान्ता-वृत्तम्

एकः कर्त्ता चिदहमिह मे कर्म कोपादयोऽमी
इत्यज्ञानां शमयदभितः कर्तृकर्मप्रवृत्तिम् ।
ज्ञानं ज्योतिः स्फुरति परमोदात्तमत्यन्तधीरं-
साक्षात् कुर्वन्निरुपधि पृथग्द्रव्यनिर्भासि विश्वम् ॥४६॥

ननु ज्ञाने कथं न कर्तृकर्म प्रवृत्तिरिति चेत्—

मालिनी-वृत्तम्

परपरणतिमुज्झत् खण्डयत् भेदवादान्
इदमुदितमखण्डं ज्ञानमुच्चण्डमुच्चैः ।
ननु कथमवकाशः कर्तृ—कर्मप्रवृत्ते-
रिह भवति कथं वा पौद्गलः कर्म-बन्धः ॥४७॥

अथ चेतनश्चकास्तीति प्रकाशते—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

इत्येवं विरचय्य संप्रति परद्रव्यान्निवृत्तिं परां
स्वं विज्ञानघनस्वभावमभयादास्तिघ्नुवानः परम् ।
अज्ञानोत्थितकर्तृकर्मकलनात् क्लेशान्निवृत्तः स्वयं
ज्ञानीभूत इतश्चकास्ति जगतः साक्षी पुराणः पुमान् ॥४८॥

अथात्मनः कर्तृत्वशून्यत्वं संसूचयति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

व्याप्य-व्यापकता तदात्मनि भवेन्नैवातदात्मन्यपि
व्याप्य-व्यापकभावसंभवमृते का कर्तृ-कर्मस्थितिः ।
इत्युद्दामविवेकघस्मरमहो भारेण भिन्दस्तमो
ज्ञानीभूय तदा स एव लसितः कर्तृत्वशून्यः पुमान् ॥४९॥

कर्त्ता-कर्म-अधिकार

अब जीव और अजीव कर्ता और कर्म रूप से प्रवेश करते हैं—

शार्दूलविक्रीडित (वर्णिक) छन्द

मैं हूँ एक स्व आत्म जीव कर्ता, क्रोधादि ये कर्म हैं ।
अज्ञानी कर कर्म कर्तृ प्रवृत्ती को दूर सर्वं कहे ॥
ऐसी ज्ञान विभूति व्यक्तहि करे, जो धीर निष्कर्म है ।
सो ही द्रव्य पृथक प्रकाशित करे, ज्ञाता-सुदृष्टा कहे ॥४६॥

ज्ञान में कर्त्ता कर्म प्रवृत्ति क्यों नहीं है–इसके उत्तर स्वरूप कहते हैं—

शार्दूलविक्रीडित (वर्णिक) छन्द

ज्यों मोही परिणती सर्वं तजता, त्यों भेद वादं नशे ।
सर्वं पूर्ण अखण्ड रूप महिमा, औ तेज पुंज लसे ॥
ऐसा ज्ञानहि श्रेष्ठ व्यक्त यह जो उद्योतमानं सदा ।
कर्ता कर्म प्रवृत्ति दूर जब ही, पौद्गलय बन्धन हटा ॥४७॥

ज्ञानी आत्मा शोभित होता है–यह कहते हैं—

शार्दूलविक्रीडित छन्द

इत्येवं सुप्रसिद्ध आत्म जब ही, है द्रव्य सर्वं जहे ।
जो विज्ञान स्वभाव रूप घन ही निष्कंप आत्मा लहे ॥
वो अज्ञान स्वभाव कर्म करना, के दुःख से दूर है ।
औ अध्यात्म प्रकाश ज्ञानमय ही, सो सर्व दर्शी कहे ॥४८॥

आत्मा के कर्त्तापना नहीं है–यह कहते हैं—

शार्दूलविक्रीडित छन्द

व्याप्यव्यापक भाव रूप इक में अन्य स्वरूपं नहीं ।
द्रव्यं औ गुण भाव भावक बिना कर्त्ता न कर्म स्थिती ॥
ऐसा श्रेष्ठ विवेक भेद कर जो, मिथ्यान्धकारं नशे ।
सो ज्ञानी यह धन्य शोभित अहो, कर्तृत्व शून्यं कहे ॥४९॥

अथानयोर्व्याप्यव्यापकत्वं पुनारुणद्धि—

स्रग्धरा-वृत्तम्

ज्ञानी जानन्नपीमां स्वपरपरणतिं पुद्गलश्चाप्यजानन्
व्याप्तृव्याप्यत्वमन्तः कलयितुमसहौ नित्यमत्यन्तभेदात् ।
अज्ञानात्कर्तृ-कर्मभ्रममतिरनयोर्भाति तावन्न यावद्
विज्ञानार्चिश्चकास्ति क्रकचवददयं भेदमुत्पाद्य सद्यः ।।५०।।

अथ कर्तृकर्मादित्रयं पृथगुपदिशति पद्यचतुष्टयेन—

आर्या-वृत्तम्

यः परिणमति स कर्ता, यः परिणामो भवेत्तु तत्कर्म ।
या परणतिः क्रिया सा, त्रयमपि भिन्नं न वस्तुतया ।।५१।।

अनेकत्वेऽपि एकत्वमिति स्फुटयति—

आर्या-वृत्तम्

एकः परिणमति सदा, परिणामो जायते सदैकस्य ।
एकस्य परणतिः स्यात् अनेकमप्येकमेव यतः ।।५२।।

आर्या-वृत्तम्

नोभौ परिणमितः खलु परिणामो नोभयो प्रजायेत ।
उभयोर्न परणतिः स्यात् यदनेकमनेकमेव सदा ।।५३।।

आर्या-वृत्तम्

नैकस्य हि कर्त्तारौ द्वौ स्तो, द्वे कर्मणी न चैकस्य ।
नैकस्य च क्रिये द्वे एकमनेकं यतो न स्यात् ।।५४।।

अथाज्ञानमाहात्म्यं निरूपयति—

शार्दूलविक्रीडितं-वृत्तम्

आसंसारत एव धावति परं कुर्वेऽहमित्युच्चकैः
दुर्वारं ननु मोहनामिह महाहङ्काररूपं तमः ।
तदभूतार्थपरिग्रहेण विलयं यद्येकवारं व्रजेत्
तत् किं ज्ञानघनस्य बन्धनमहो भूयो भवेदात्मनः ।।५५।।

जीव और पुद्गल के व्याप्य व्यापकपने का निषेध करते हैं—

शार्दूलविक्रीडित छन्द

जाने अन्य स्व की प्रवृत्ति वुध जो, पुद्गलय जाने नहीं।
दोनों नित्यहि भेद अन्तर कहे, जो व्याप्य व्यापे नहीं ॥
यावत् ज्योंहि करोंतवत् नहिं भिदे, ना ज्ञान ज्योति जगे।
तावत् कर्त्तृ सुकर्म रूप मति ही, अज्ञान रूपं लखे ॥५०॥

अब कर्त्ता कर्म क्रिया का पृथक् विवेचन करते हैं—

सखी छन्द [१४ मात्रा]

कर्त्ता परिणामी ही है परिणाम हि कर्म कहे हैं।
जो परिणति वो हि क्रिया है, त्रय नाम जो एक हुआ है ॥५१॥

कर्त्ता आदि में भेद होने पर भी एकपना है यह दिखाते हैं—

सखी छन्द [१४ मात्रा]

इक वस्तु परिणमन करती, परिणाम सदा इक धरती।
परिणति भी इक रूपहि है, बहु रूप जो होकर इक है ॥५२॥

प्रत्येक द्रव्य का परिणमन जुदा-जुदा है—यह कहते हैं—

सखी छन्द [१४ मात्रा]

द्वि द्रव्य परिणमन न इक सा, परिणाम न इक सा होता।
द्वि द्रव्य की इक परिणति ना, जो अनेक एक हुए ना ॥५३॥

एक द्रव्य का परिणमन दूसरे मिल कर नहीं होता–यह कहते हैं—

सखी छन्द [१४ मात्रा]

इक कर्म के द्वि कर्त्ता ना, इक कर्तृ के कर्म द्विधा ना।
इक कर्म की द्वि न क्रियायें, चूँकि इक में अनेक न पायें ॥५४॥

अब अज्ञान का माहात्म्य दिखाते हैं —

वीर छन्द [मात्रिक]

निश्चय से मोही के जब से, जग है पर का कर्त्ता हूँ।
ऐसा अहंकार मिथ्यातम, दुर्निवार संस्कार कहूँ ॥
वह मिथ्यातम भेदज्ञान से, हो विलीन इक बार जभी।
फिर ज्ञानपुंज निज का बंधन, क्यों हो सकता अहो कभी ॥५५॥

अथात्मपरभावं बाभज्यते—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

आत्मभावान् करोत्यात्मा परभावान् सदा परः ।
आत्मैव ह्यात्मनो भावाः परस्य पर एव ते ।।५६।।

अथ ज्ञानरागयोर्युगपद्दार्ष्टान्तयति—

वसंततिलका-वृत्तम्

अज्ञानतस्तु सतृणाभ्यवहारकारी,
ज्ञानं स्वयं किल भवन्नपि रज्यते यः ।
पीत्वा दधीक्षुमधुराम्लरसातिगृद्ध्या
गां दोग्धि दुग्धमिव नूनमसौ रसालाम् ।।५७।।

अथाज्ञानविलासं विजृम्भते—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

अज्ञानान्मृगतृष्णिकां जलधिया धावन्ति पातुं मृगाः
अज्ञानात्तमसि द्रवन्ति भुजगाध्यासेन रज्जौ जनाः ।
अज्ञानाच्च विकल्पचक्रकरणात्वातोत्तरङ्गाब्धिवत्
शुद्धज्ञानमया अपि स्वयममी कर्त्रीभवन्त्याकुलाः ।।५८।।

अथ ज्ञानविलासमाविष्करोति—

वसंततिलका-वृत्तम्

ज्ञानात् विवेचकतया तु परात्मनोर्यो
जानाति हंस इव वाः पयसोर्विशेषम् ।
चैतन्यधातुमचलं स सदाधिरूढो
जानीत एव हि करोति न किंचनापि ।।५९।।

अथ ज्ञानादेव भेदमुज्जृम्भते—

मन्दाक्रान्ता-वृत्तम्

ज्ञानादेव ज्वलनपयसोरौष्ण्यशैत्यव्यवस्था
ज्ञानादेवोल्लसति लवणस्वादभेदव्युदासः ।
ज्ञानादेव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातोः
क्रोधादेश्च प्रभवति भिदा भिन्दती कर्तृभावम् ।।६०।।

अब आत्मा और पर के विभाग का वर्णन करते हैं—

वीर छन्द [मात्रिक]

आत्मा नित अपने में निश्चल, आत्मा भाव का कर्त्ता है।
और अन्य पर द्रव्य कहे, वो परभावों का कर्त्ता है।।
अतः यही निश्चित करना, जो आत्म भाव आत्मा ही है।
अरु अपने से भिन्न भाव वे, पर स्वभाव में पर ही हैं।।५६।।

अब ज्ञान और राग का एक साथ दृष्टान्त पूर्वक वर्णन करते हैं—

वीर छन्द [मात्रिक]

ज्यों गजादि तृण मिश्रित सुन्दर अन्नादिक आहार करें।
स्वयं ज्ञानमय होकर त्यों नर, मिथ्यापन से राग करें।।
ज्यों मदमत्त श्रीखंड पीकर रस स्वादिक से गाय दुहे।
आत्मिक सुख की इच्छा से ज्यों मूढ़ विषय में मग्न रहे।।५७।।

अज्ञान ही कर्तृपन का कारण है—यह कहते हैं—

वीर छन्द [मात्रिक]

भ्रम से मृग गण जल मति से ज्यों मृग जल पीने दौड़ रहे।
त्यों तम में जन जन रस्सी में सर्प जान कर भाग रहे।।
जलधि स्वभाव ज्यों स्थिर फिर भी वायु जाल से लहराते।
स्वयं ज्ञान मय शुद्ध जीव त्यों, व्याकुलपन से कर्त्तृ रहे।।

ज्ञानी मात्र जानता है, अतएव कर्त्ता नहीं होता, यह कहते हैं—

वीर छन्द [मात्रिक]

जिस प्रकार से हंस दूध जल, भिन्न विशेष समझता है।
वैसे शुद्ध विवेचन द्वारा, निज पर भेद परखता है।।
वह नित निश्चल आत्म मूर्ति का आश्रय केवल लेता है।
मात्र जानता करता नहिं कुछ 'अभय' ज्योति में रमता है।।५९

ज्ञान से ही भेद ज्ञान होता है—यह कहते हैं—

रोला छन्द [मात्रिक]

स्पर्श ज्ञान से अग्नि उष्ण, जल शीत कहे हैं।
रसना ज्ञान से लवण, स्वाद का भेद भये हैं।।
ज्ञान ज्योति क्रोधादि आत्म में भेद करे है।
स्व रस सुशोभित कर्त्तृ भाव को त्याग करे है।।६०।।

अथात्मनः स्वपरभावयोः कर्तृत्वं निवेद्यते—

अनुष्टुप् वृत्तम्

अज्ञानं ज्ञानमप्येवं कुर्वन्नात्मानमञ्जसा।
स्यात्कर्तात्मात्मभावस्य परभावस्य न क्वचित् ॥६१॥

अथात्मनो व्यवहारिणां कर्तृत्वमतिं व्युपदिशति—

अनुष्टुप् वृत्तम्

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत् करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ॥६२॥

अथ साक्षेपं जीवस्य पुद्गलकर्तृत्वं प्रतिबध्नाति—

वसंततिलका वृत्तम्

जीवः करोति यदि पुद्गलकर्म नैव,
कस्तर्हि तत्कुरुत इत्यभिशङ्कयैव।
एतर्हि तीव्रस्य मोहनिवर्हणाय
संकीर्त्यते शृणुत पुद्गल कर्म कर्तृ ॥६३॥

अथ पुद्गल परिणामित्वं पूर्वपक्षक्षेपेण साक्षेपमाक्षिपति—

उपजाति वृत्तम्

स्थितेत्यविघ्ना खलु पुद्गलस्य,
स्वभावभूता परिणामशक्तिः।
तस्यां स्थितायां स करोति भावं,
यमात्मनस्तस्य स एव कर्ता ॥६४॥

अथ सांख्यवादिनं प्रति जीवस्य नित्यत्वं निरस्यति—

उपजाति वृत्तम्

स्थितेति जीवस्य निरन्तराया
स्वभावभूता परिणामशक्तिः।
तस्यां स्थितायां स करोति भावं
यं स्वस्य तस्यैव भवेत् स कर्ता ॥६५॥

आत्मा स्व भाव का कर्ता है, पर का नहीं— यह कहते हैं—

रोला छन्द (मात्रिक)

तत्त्व दृष्टि से ज्ञान रूप आत्मा को मानो।
अज्ञानी अज्ञान रूप का कर्त्ता जानो॥
फिर भी आत्मा आत्म भाव का कर्त्ता ही है।
निश्चय से पर भावों का कर्त्ता न कभी है॥६१॥

व्यवहारी जनों की आत्मा में कर्तृत्व बुद्धि है—यह कहते हैं—

रोला छन्द (मात्रिक)

आत्मा ही खुद ज्ञान का रूप फिर किसका कर्त्ता?
ज्ञान सिवाय न अन्य, किसी का कर्त्ता धर्त्ता।
जो पर भावों का कर्त्ता आत्मा को माने।
उन व्यवहारी जीवों का अज्ञान वखाने॥६२॥

यदि जीव पुद्गल कर्म का कर्ता नहीं है तो पुद्गल कर्म का कर्ता कौन है? उत्तर—

रोला छन्द (मात्रिक)

यदि पुद्गल कर्मों का कर्त्ता, जीव नहीं है।
तो फिर कर्त्ता कौन स्वयं, शंका ऐसी है॥
तीव्र विमोह के दूर करने को पुद्गल कर्म।
उसके कर्त्ता का वर्णन है भव्य सुनो तुम॥६३॥

पुद्गल स्वयं परिणमन शक्ति वाला है। अतः अपने परिणाम का वही कर्ता है—यह दिखलाते हैं—

रोला छन्द (मात्रिक)

इस प्रकार पारिणामिक शक्ति, पुद्गल की जो।
है निर्विघ्न स्वभाव भूत से सिद्ध जभी वो॥
पुद्गल जिस स्थिति में, भाव का जब कर्त्ता है।
तब उस भाव का पुद्गल ही, कर्त्ता बनता है॥६४॥

जीव भी परिणमन स्वभाव वाला है अतः जिस भाव को कर्ता है उसका कर्ता है—

पद्धरि छंद (मात्रिक)

इस कारण जीव स्वभाव भूत, निर्विघ्न परिणमन शक्तिरूप।
उसमें आत्मा जो भाव लहे, उसका कर्त्ता खुद जीव कहे॥६५॥

अथ ज्ञानाज्ञानयोर्ज्ञानाज्ञानत्वं कुतः ? इति पद्यद्वयेनाभिलपति—

आर्या

ज्ञानमय एव भावः कुतो भवेज्ज्ञानिनो न पुनरन्यः ।
अज्ञानमयः सर्वः कुतोऽयमज्ञानिनो नान्यः ॥६६॥

अनुष्टुप् वृत्तम्

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ताः सर्वे भावा भवन्ति हि ।
सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ता भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते ॥६७॥

अथाज्ञानत एव कर्मणां बन्धमिति प्रतिजानीते—

अनुष्टुप् वृत्तम्

अज्ञानमयभावानामज्ञानी व्याप्य भूमिकाम् ।
द्रव्यकर्मनिमित्तानां भावानामेति हेतुताम् ॥६८॥

अथानयपक्षपाते सुखमावेदयति—

उपेन्द्रवज्रा वृत्तम्

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं
स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यम् ।
विकल्पजालच्युतशान्तचित्ता-
स्त एव साक्षादमृतं पिबन्ति ॥६९॥

अथ वद्धमूढरक्तदुष्टकर्त्रितरादिनयविभागं जेगीयते—

उपजाति वृत्तम्

एकस्य वद्धो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्-
तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥७०॥

ज्ञानी के ज्ञानमय और अज्ञानी के अज्ञानमय भाव ही क्यों होते हैं—इस प्रश्न का उत्तर—

पद्धरि छन्द (मात्रिक)

क्यों ज्ञानी ज्ञान स्वभाव लहे,
पर अन्य भाव क्यों नहीं गहे।
अज्ञानी क्यों अज्ञान रहे,
क्यों अन्य भाव को नहीं लहे ॥६६॥

ज्ञानी के भाव ज्ञान निर्मित और अज्ञानी के भाव अज्ञान निर्मित होते हैं-यह कहते हैं—

पद्धरि छन्द (मात्रिक)

ज्ञानी के जो भी भाव कहे, वे ज्ञानहि से निष्पन्न हुए।
अज्ञानी के सब भाव भये, अज्ञानहि से सब रचे गये ॥६७॥

अज्ञान से ही कर्मों का बंध होता है—यह कहते हैं—

पद्धरि छन्द (मात्रिक)

अज्ञानी मिथ्या भाव धरे, अज्ञान भूमिका व्याप्त करे।
सो द्रव्य कर्म हि निमित्त हुए, सब भाव हेतुपन प्राप्त किये ॥६८॥

नयों का पक्ष छोड़ने पर सुख होता है-यह कहते हैं—

अडिल्ल छन्द (मात्रिक)

जो ज्ञानी नय पक्ष छोड़ निज में रमें,
करहिं आप में नित्य निवास न जग भ्रमें।
हो विकल्प सब मुक्त शांत चित को धरे,
वह साक्षात् सु अमृत पान सदा करे ॥६९॥

बद्ध और अबद्ध को लेकर नय विभाग का वर्णन करते हैं—

अडिल्ल छन्द (मात्रिक)

कर्मों से है बद्ध एक नय जो कहे,
नहीं बद्ध है चेतन दूजा नय कहे।
दो नय के दो पक्ष शून्य ज्ञानी रहे,
उनही के सिद्धान्त में चित चेतन कहे ॥७०॥

उपजाति वृत्तम्

एकस्य मूढो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्-
तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥७१॥

उपजाति वृत्तम्

एकस्य रक्तो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातम्
तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥७२॥

उपजाति वृत्तम्

एकस्य दुष्टो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्
तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥७३॥

उपजाति वृत्तम्

एकस्य कर्ता न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्
तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥७४॥

उपजाति वृत्तम्

एकस्य भोक्ता न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्
तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥७५॥

मोही और निर्मोही को लेकर नय-विभाग का वर्णन—

अडिल्ल छन्द (मात्रिक)

एकहि नय का पक्ष जो मोही आत्मा,
दूजहि नय का पक्ष विमोही आत्मा।
दोनों पक्ष विमुक्त तत्त्व ज्ञानी रहे,
उनके मत में चेतन ज्योति सदा लहे ॥७१॥

रागी और विरागी को लेकर नय विभाग का वर्णन—

अडिल्ल छन्द (मात्रिक)

नय व्यवहार सरागी जीव सदा कहे,
निश्चय नय से जीव विरागी ही रहे।
दोनों नय से रहित तत्त्वज्ञानी भये,
उनके दर्शन में इक चेतन ही लहे ॥७२॥

द्वेषी और अद्वेषी को लेकर नय विभाग का वर्णन—

अडिल्ल छन्द (मात्रिक)

एक पक्ष आत्मा को द्वेषी ही कहे,
पक्ष दूसरा आत्मा द्वेषी नहिं कहे।
पक्षपात नय शून्य तत्त्ववेदी रहे,
उनके मन में नित्य शुद्ध चेतन लहे ॥७३॥

कर्त्ता और अकर्त्तापन को लेकर नय विभाग का वर्णन—

अडिल्ल छंद (मात्रिक)

जो पर्यायार्थिक दृष्टि जीव कर्त्ता कहे,
निश्चय दृष्टि अकर्त्ता जीव सदा लहे।
दो नय के दो पक्षपात बुधजन तजें,
उनका यह सिद्धान्त सदा निज को भजे ॥७४॥

भोक्ता और अभोक्तापन को लेकर नय विभाग का वर्णन—

अडिल्ल छंद (मात्रिक)

इक नयवादी भोक्ता आत्मा को कहे,
इतर पक्ष के आत्मा भोक्ता नहिं गहे।
दो विकल्प से मुक्त तत्त्वज्ञानी रहे,
उनके आगम में नित चेतन ही लहे ॥७५॥

उपजाति वृत्तम्

एकस्य जीवो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्
तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥७६॥

उपजाति वृत्तम्

एकस्य सूक्ष्मो न तथा परस्य
चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्
तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥७७॥

उपजाति वृत्तम्

एकस्य हेतुर्न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥७८॥

उपजाति-वृत्तम्

एकस्य कार्यं न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥७९॥

उपजाति-वृत्तम्

एकस्य भावो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८०॥

उपजाति-वृत्तम्

एकस्य चैको न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८१॥

उपजाति-वृत्तम्

एकस्य सान्तो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८२॥

जीव के सद्भाव और अभाव को लेकर नय विभाग का वर्णन—

चौपाई छंद (मात्रिक)

एक दृष्टि से जीवहि कहे, अन्य दृष्टि से जीव न लहे ।
इन दोनों से रहित सुजान, उनका मत चैतन्य प्रधान ।।७६।।

सूक्ष्म और सूक्ष्म के अभाव को लेकर नय विभाग का वर्णन—

चौपाई छंद (मात्रिक)

आत्मा सूक्ष्म कहे व्यवहार, निश्चय से नहिं सूक्ष्म प्रकार ।
पक्षपात से शून्य महान्, उनका दर्शन चेतन जान ।।७७।।

कारण और अकारण को लेकर नय विभाग का वर्णन—

चौपाई छन्द (मात्रिक)

इक नय से जिय हेतु स्वरूप, दूजे नय से हेतु न रूप ।
दो नय पक्ष रहित विद्वान्, उनके मत में आत्म प्रधान ।।७८।।

कार्य और अकार्य को लेकर नय-विभाग का वर्णन—

चौपाई छंद (मात्रिक)

एकहि कार्य रूप जिय कहे, अन्य न कार्य रूप जो लहे ।
दोनों नय से शून्य सुजान, उनका मत चैतन्य वखान ।।७९।।

आत्मा के भाव और अभाव को लेकर नय विभाग का वर्णन—

चौपाई छंद (मात्रिक)

शुद्ध दृष्टि जियभाव स्वरूप, अशुद्धदृष्टि नहिं भावस्वरूप ।
दो विकल्प नय मुक्त सुजान, उनका मत चित् चेतन मान ।।८०।।

एक रूप और अनेक रूप को लेकर नय-विभाग का वर्णन—

चौपाई छंद (मात्रिक)

इक नय से आतम इक रूप, दूजे नय से एक न रूप ।
उभय नयों से मुक्त सुजान, उनका धर्म सुचेतन जान ।।८१।।

शान्त और अशान्त की अपेक्षा नय-विभाग का वर्णन—

सोरठा छंद (मात्रिक)

इक कह आत्मा शान्त, दूजा कह नहिं शान्त है ।
तजें विकल्प सुजान, वह आत्मा चेतन कहे ।।८२।।

उपजाति-वृत्तम्

एकस्य नित्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८३

उपजाति-वृत्तम्

एकस्य वाच्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८४

उपजाति-वृत्तम्

एकस्य नाना न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८५

उपजाति-वृत्तम्

एकस्य चेत्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८६

उपजाति-वृत्तम्

एकस्य दृश्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८७

उपजाति-वृत्तम्

एकस्य वेद्यो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८८

उपजाति-वृत्तम्

एकस्य भातो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥८९

आत्मा के नित्य और अनित्यपने को लेकर नय विभाग का वर्णन—

सोरठा छंद (मात्रिक)

इक नय से जिय नित्य, दूजे नय सु अनित्य है।
दो नय से जु विमुक्त, वह बुध चेतन ही लहे ॥८३॥

आत्मा के वाच्य और अवाच्यपने की अपेक्षा नय भेद वर्णन

सोरठा छन्द (मात्रिक)

भेद वाच्य कह जीव, नहिं अभेद से वाच्य है।
दो विकल्प से मुक्त, बुधजन इक चेतन कहे ॥८४॥

आत्मा के अनेक और नानेकपने को लेकर नय विभाग वर्णन

सोरठा छन्द (मात्रिक)

इक नय से बहु जीव, अन्य न बहुविध जीव है।
दोनों नय से मुक्त, उनका मत बुध चित लहे ॥८५॥

आत्मा के चैतन्य और अचैतन्यपने का नय विभाग से वर्णन करते हैं

सोरठा छन्द (मात्रिक)

इक नय से जिय चैत्य, अपर नय से न चैत्य है।
किन्तु विकल्प विमुक्त, बुध जन चेतन ही कहे ॥८६॥

आत्मा के दृश्य और अदृश्यपने को लेकर नय विभाग का वर्णन

दोहा

एक पने से दृश्य जिय, अन्य पने नहिं दृश्य।
दोनों नय से मुक्त जो, वह बुध चेतन सत्य ॥८७॥

आत्मा के वेद्य और अवेद्यपने को लेकर नय विभाग का वर्णन

दोहा

आत्म वेद्य व्यवहार से, निश्चय वेद्य न मान।
दोनों नय से मुक्त बुध, चेतन एक बखान ॥८८॥

आत्मा के भात (प्रत्यक्ष) और अभात (अप्रत्यक्षपने को लेकर नय विवक्षा) कहते हैं—

दोहा

इक नय से जिय भात है, दूजा कहे न भात।
दोनों नय से मुक्त बुध, उनका मत चिन्मात्र ॥८९॥

अथ नयातिक्रमेण स्वानुभूतिमुपदर्शयति—

वसंततिलका-वृत्तम्

स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजाला-
मेवं व्यतीत्य महतीं नयपक्षकक्षाम् ।
अन्तर्बहिः समरसैकरसस्वभावं
स्वं भावमेकमुपपात्यनुभूतिमात्रम् ॥९०॥

अथ विकल्पजालं धिक्कृत्य स्वरूपं तंतन्यते—

रथोद्धता-वृत्तम्

इन्द्रजालमिदमेवमुच्छलत्—
पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभिः ।
यस्य विस्फुरणमेव तत्क्षणं
कृत्स्नमस्यति तदस्मि चिन्महः ॥९१॥

अथ समयसारचेतनामाचिन्तयति—

स्वागता-वृत्तम्

चित्स्वभावभरभावितभावाऽभावभावपरमार्थतयैकम् ।
बन्धपद्धतिमपास्य समस्तां चेतये समयसारमपारम् ॥९२॥

अथ समयसारं पापठीति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

आक्रामन्नविकल्पभावमचलं पक्षैर्नयानां विना
सारो यः समयस्य भाति निभृतैरास्वाद्यमानः स्वयम् ।
विज्ञानैकरसः स एष भगवान् पुण्यः पुराणः पुमान्
ज्ञानं दर्शनमप्ययं किमथवा यत्किञ्चनैकोऽप्ययम् ॥९३॥

नय विकल्प के छूटने पर स्वानुभूति होती है, यह कहते हैं—

चाल छन्द (मात्रिक)

जिसमें हैं स्वेच्छा रूप, बहुत विकल्प लहे।
जो बहु नय पक्ष स्वरूप, अटवी लाँघ रहे ॥
अन्तर्बहि सम रस रूप, इक रस भाव गहे।
अनुभूति मात्र ही एक, भाव अपूर्व लहे ॥९०॥

विकल्प जाल को नष्ट करके आत्मानुभूति प्रकट होती है, कहते हैं—

चाल छन्द (मात्रिक)

जो विपुल विकल्प स्वरूप, लहरों से उछले।
यह सब इन्द्र का जाल, जिसकी कान्ति हरे।
ऐसा वह चेतन मात्र, तेज-पुंज मैं हूँ।
जब आत्मभूति कर प्राप्त, शुद्ध अभयमति हूँ ॥९१॥

समयसार चेतना का विचार करते हैं—

चाल छन्द (मात्रिक)

बुध ऐसा करे विचार, बन्धन रूढ़ि तजूं।
जो समयसार नहिं पार, मैं अनुभूति धरूँ ॥
चिद्भावों में उत्पाद, व्यय अरु ध्रौव्य रहे।
ऐसा जिसका परमार्थ, एक स्वरूप कहे ॥९२॥

पक्षातिक्रान्त ही समयसार है यह कहते हैं—

त्रिभंगी-छन्द (मात्रिक)

नय पक्ष रहित जो, नाश रहित वो, निर्विकल्प को प्राप्त हुआ।
निश्चल नर द्वारा अनुभववाला, ज्ञान एक रस युक्त हुआ ॥
जो समयसार है वह श्रृंगार है, जिनवर पुण्य पुरुष भी है।
वह ज्ञान कहो या दर्शन हो या, एक शब्द से कुछ भी है ॥९३॥

अथात्मनो गतानुगततां साधयति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

दूरं भूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्निजौघाच्च्युतो
दूरादेव विवेकनिम्नगमनान्नीतो निजौघं बलात् ।
विज्ञानैकरसस्तदेकरसिनाम् आत्मानमात्माहरन्
आत्मन्येव सदा गतानुगततामायात्ययं तोयवत् ॥९४॥

अथ विकल्पस्वरूपं विकल्पयति—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

विकल्पकः परं कर्ता विकल्पः कर्म केवलम् ।
न जातु कर्तृकर्तृत्वं सविकल्पस्य नश्यति ॥९५॥

अथ जीवपुद्गलयोः कर्तृवेत्तृत्वं भिनत्ति—

रथोद्धता-वृत्तम्

यः करोति स करोति केवलं,
यस्तु वेत्ति स तु वेत्ति केवलम् ।
य करोति न हि वेत्ति स क्वचित्
यस्तु वेत्ति न करोति स क्वचित् ॥९६॥

अथ ज्ञप्ति-करोत्योर्भिन्नत्वमुद्भासते—

इन्द्रवज्रा-वृत्तम्

ज्ञप्तिः करोतौ नहि भासतेऽन्तः,
ज्ञप्तौ करोतिश्च न भासतेऽन्तः ।
ज्ञप्तिः करोतिश्च ततो विभिन्ने,
ज्ञाता न कर्त्तेति ततः स्थितं च ॥९७॥

अथ कर्तृकर्मणोः परस्परमैक्यं निराचेक्रीयते—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

कर्त्ता कर्मणि नास्ति, नास्ति नियतं कर्मापि तत्कर्त्तरि
द्वन्द्वं विप्रतिषिध्यते यदि सदा का कर्तृ-कर्मस्थितिः ।
ज्ञाता ज्ञातरि कर्म कर्मणि सदा, व्यक्तेति वस्तुस्थितिः
नेपथ्ये वत नानटीति रभसा मोहस्तथाप्येष किम् ॥९८॥

आत्मा की गतानुगतता सिद्ध करते हैं,

त्रिभंगी-छन्द (मात्रिक)

यह जिय स्वभावच्युत, बहु विकल्पयुत, जाल गहन में भ्रमण किया
विज्ञान मार्ग के, गमन शक्ति से, गुण समूह में मिला दिया ॥
वह एक ज्ञान रस, आत्म रूप लख, रसिकजनों को हरण किया ॥
जो जल समान है, भासमान है, आत्मलीन में प्राप्त हुआ ॥९४॥

अब विकल्प का स्वरूप विचारते हैं—

अनुष्टुप् छन्द (वर्णिक)

विकल्पक परं कर्त्ता, कर्म विकल्प केवलं ।
सविकल्प नरं काचित्, कर्तृ कर्म न नश्यति ॥९५॥

अब जीव और पुद्गल के कर्तापन और ज्ञातापन का वर्णन करते हैं—

अनुष्टुप्-छन्द (वर्णिक)

कर्त्ता स्वयं रहे कर्त्ता, ज्ञाता ज्ञायक मात्र ही ।
ज्ञायक सो नहीं कर्त्ता, कर्त्ता ज्ञायक हो नहीं ॥९६॥

ज्ञातापन और कर्तापन में भिन्नता दिखाते हैं—

अनुष्टुप् छन्द (वर्णिक)

कर्तृ क्रिया नहीं ज्ञप्ति, ज्ञप्ति क्रिया न कर्त्तृ है ।
दोनों भिन्न सदा सो हैं, ज्ञाता जो कर्ता न है ॥९७॥

अब कर्त्ता कर्म में पारस्परिक भेद का वर्णन करते हैं—

मद अवलिप्त कपोल छन्द (मात्रिक)

निश्चय से नहिं कर्त्तृ कर्म में, कर्म कर्त्तृ में नहिं बुधजन ।
कर्त्ता कर्म निषेध होय फिर, द्वैत रूप स्थिती क्यों मान ॥
ज्ञाता ज्ञायक में अरु कर्मणि, कर्म स्थिती प्रसिद्ध बखान ।
फिर भी छिपकर मोह वेग से, नृत्य करे यह खेद महान्॥९८

अथ ज्ञानज्योतिर्ज्वलीति—

मन्दाक्रान्ता-वृत्तम्

कर्त्ता कर्त्ता भवति न यथा कर्म कर्मापि नैव
ज्ञानं ज्ञानं भवति च यथा पुद्गलः पुद्गलोऽपि ।
ज्ञानज्योतिर्ज्वलितमचलं व्यक्तमन्तस्तथोच्चैः
चिच्छक्तीनां निकरभरतोऽत्यन्तगम्भीरमेतत् ॥९९॥

इति कर्तृकर्माधिकारः समाप्तः

श्रुत पंचमी—एक परिचय

श्रुत पंचमी भारतीय संस्कृति एवं विशेषतः जैन संस्कृति का ऐतिहासिक ज्ञान पर्व है। इस दिन सैकड़ों हजारों वर्षों से चले आ रहे मौखिक ज्ञान को लिपिबद्ध किया गया था। उस दिन ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी थी और आचार्य धरसेन के दो सुयोग्य शिष्यों—आचार्य भूतबलि एवं पुष्पदंत ने भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित द्वादशांग वाणी के प्रतीक षट्खण्डागम ग्रन्थ को निबद्ध किया था। उसी पावन दिन की स्मृति में श्रुत पंचमी का यह समारोह सारे देश में मनाया जाता है।

श्रुत पंचमी के उद्गम की कहानी

भगवान महावीर की वाणी मौखिक रूप में थी। अन्तिम केवली जम्बू स्वामी तक वह अविच्छिन्न रूप से चलती रही। आचार्य भद्रबाहु अन्तिम श्रुत केवली थे। इनके पश्चात् अंग एवं पूर्व ज्ञान का धीरे-धीरे ह्रास होने लगा। अवशिष्ट ज्ञान के संकलन के लिए विभिन्न शताब्दियों में परिषदों का भी आयोजन किया गया लेकिन उनमें भी विशेष सफलता नहीं मिली। अन्त में गिरनार पर्वत की चन्द्र गुफा में जब अंगों एवं पूर्वों के एक देश के ज्ञाता आचार्य धरसेन ध्यानस्थ थे तो उन्हें श्रुतज्ञान के लोप होने की चिन्ता हुई। उन्होंने महिमा नगरी में होने वाले मुनि सम्मेलन तक अपना सन्देश पहुँचाया। जिसके फलस्वरूप वहाँ से दो योग्यतम मुनि उनके पास पहुँचे। आचार्य श्री ने सर्व प्रथम उनकी योग्यता की परीक्षा ली और जब वे सब तरह से सन्तुष्ट हो गये

है और रागादि भावों का उपादान आत्मा है। जब वह आत्मा रागादि से रहित शुद्ध आत्मतत्त्व का अनुभव करता है तब वह भावकर्म-द्रव्य कर्म के कर्तृत्व से रहित हो जाता है।

तो उन्होंने इन दोनों मुनियों को अवशिष्ट ज्ञान को जो उनकी स्मृति में था, उसे पढ़ा दिया। इन मुनियों का नाम भूतबलि और पुष्पदन्त था। उन्होंने आचार्य धरसेन से अवशिष्ट अंगों एवं पूर्वों का अध्ययन करके 'षट्खण्डागम' नामक सिद्धान्त ग्रन्थ की रचना की। रचना समाप्ति के पश्चात् भूतबलि आचार्य ने पुस्तकारूढ़ षट्खण्डागम की ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन चतुर्विध संघ के साथ पूजा की और उसको स्वाध्याय और मनन के लिये विमोचन कर दिया। जिससे ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी श्रुत पंचमी के रूप में प्रख्यात हो गई। यह प्रथम शताब्दी की घटना है। इसी स्मृति के फलस्वरूप प्रतिवर्ष श्रुत-पंचमी महोत्सव सारे देश में मनाया जाता है। प्राचीन ग्रन्थों की सुरक्षा एवं उनके प्रसार प्रचार के साथ साहित्य के निर्माण की प्रेरणा देने के लिये यह श्रुत पंचमी प्रति वर्ष आती है और ज्ञानाराधना का नया सन्देश देती है।

षट्खण्डागम

आचार्य भूतबलि एवं पुष्पदंत द्वारा प्राकृत भाषा में विरचित यह एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त ग्रन्थ है। जिसमें कर्म सिद्धान्त पर अधिक विवेचन किया गया है। छः खण्डों में विभक्त होने से यह षट्खण्डागम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वे छः खण्ड हैं—जीवस्थान, क्षुद्रकबन्ध, स्वामित्व विचय, वेदना, वर्गणा और महाबन्ध। इनमें से प्रथम खण्ड जीवस्थान के अन्तर्गत सत्प्ररूपणा भाग के रचयिता आचार्य पुष्पदंत हैं तथा शेष सभी ग्रन्थ आचार्य भूतबलि द्वारा रचे गये हैं।

विशाल साहित्य

इसके पश्चात् साहित्य निर्माण का जिस द्रुत गति से कार्य सम्पन्न हुआ

वह साहित्य के इतिहास की अनोखी कहानी है। जैनाचार्य कुन्दकुन्द ने समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, अष्ट पाहुड़ जैसे महान् ग्रन्थों की रचना की। आचार्य उमास्वामी, पूज्यपाद, विद्यानन्दि, अकलंक, शिवकोटि, समन्तभद्र, नेमिचन्द्र, अमृतचन्द्र, वीरसेन, जिनसेन गुणभद्र जैसे कितने ही आचार्य हुए जिन्होंने प्राकृत, संस्कृत एवं अपभ्रंश के अतिरिक्त तामिल, तेलगु, कन्नड़ भाषाओं में भी अपार साहित्य लिखकर महलों से लेकर झोंपड़ियों तक में ज्ञान की ज्योति जलायी। इन आचार्यों ने सिद्धान्त ग्रन्थों के अतिरिक्त पुराण, काव्य चरित, अध्यात्म, न्याय, ज्योतिष, आयुर्वेद,. गणित जैसे गूढ़ विषयों पर तथा रास, फागु वेलि, बारहमासा जैसे लोकप्रिय विषयों पर जो अपार साहित्य निबद्ध किया वह इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में अंकित रहेगा। जैनाचार्यों एवं कवियों तथा लेखकों ने भारतीय मानस को विकसित करने में जो अपना योगदान दिया उस पर प्रत्येक भारतीय नागरिक अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करता है। श्रुत पंचमी के पावन दिवस पर हमारी उन सभी आचार्यों एवं साहित्य-सेवियों के चरण में सादर श्रद्धाञ्जली समर्पित है। जैनाचार्यों एवं विद्वानों द्वारा सभी भाषाओं में निबद्ध साहित्य का स्वाध्याय, मनन एवं चिन्तन तथा अप्रकाशित एवं अज्ञात साहित्य को प्रकाश में लाना ही श्रुत पंचमी महोत्सव आयोजन का वास्तविक ध्येय होना चाहिए। इसके अतिरिक्त हमारे मन्दिरों में स्थापित शास्त्र भण्डारों की देख-भाल करके उन्हें सूचीबद्ध करना, नव साहित्य का संग्रह करना तथा स्वाध्याय की परम्परा को प्रोत्साहित करना हमारा लक्ष्य होना चाहिए क्योंकि सत् साहित्य ही किसी देश एवं समाज की सांस्कृतिक विरासत को जीवित रख सकता है।

जयपुर नगर अपने स्थापनाकाल से ही जैन साहित्य का प्रमुख केन्द्र

रहा है। एक ओर यहाँ के मन्दिरों में विशाल शास्त्र भण्डार हैं जिनमें प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी एवं राजस्थानी की हजारों पाण्डुलिपियां सुरक्षित हैं तो दूसरी ओर यहाँ महापंडित टोडरमल, दौलतराम कासलीवाल, बख्तरामसाह, जयचन्द छावड़ा, पारसदास निगोत्या, सदासुख कासलीवाल जैसे पंडितगण हुये जिन्होंने प्राकृत एवं संस्कृत में निबद्ध पचासों ग्रंथों की भाषा वचनिका लिख कर उन्हें स्वाध्याय के लिये सुलभ बना दिया। इन विद्वानों द्वारा निबद्ध मोक्षमार्ग प्रकाशक, गोम्मटसार, त्रिलोकसार, आदि पुराण, पद्म पुराण, हरिवंश पुराण, अध्यात्म बारहखड़ी, बुद्धिविलास, समयसार, अर्थ प्रकाशिका, रत्नकरण्डश्रावकाचार जैसे सैकड़ों ग्रन्थ जैन साहित्य की अनुपम निधि के रूप में आज भी जयपुर नगर के लिये गौरवस्वरूप हैं।

राजस्थान जैन साहित्य परिषद् जयपुर नगर की इसी धरोहर को जीवित रखने के लिये गत पच्चीस वर्षों से सतत प्रयत्नशील है तथा श्रुत पंचमी के अवसर पर जिनवाणी रथ यात्रा निकाल कर इस महान् पर्व के अतीत पर प्रकाश डालने तथा नवीन साहित्य का निर्माण करवा कर उसके महत्व से जनसाधारण को परिचित कराने की दिशा में कार्य कर रहा है। आइए श्रुत पंचमी के इस महान् पर्व पर हम सब प्राचीन साहित्य की रक्षा करने, नवीन साहित्य निर्माण की दिशा में प्रयत्नशील होने तथा प्रतिदिन स्वाध्याय करने की प्रतिज्ञा करें जिससे ज्ञान की यह गंगा अबाधित रूप से बहती रहे एवं जन-जन के जीवन को प्रकाशित कर सके।

रा ज स्था न जै न सा हि त्य प रि ष द्, ज य पु र

मनोज प्रिन्टर्स, किशनपोल बाजार, गोदीकों का रास्ता, जयपुर-३

ज्ञान ज्योति उत्पन्न होती है–यह कहते हैं—

मद अवलिप्त कपोल छन्द (मात्रिक)

जिसके उर चैतन्य शक्ति के, गुण समूह से हुआ प्रकाश ।
अचल तेज गंभीर रूप उस, ज्ञान ज्योति का हुआ विकास ॥
जिसके बल से कर्त्तृ कर्त्तृ अरु, कर्म कर्म से नहीं बखान ।
ज्ञान ज्ञान ही पुद्गल पुद्गल, रूप "अभयमति" भिन्न लहान ॥९९

कर्ता-कर्म अधिकार समाप्त

कर्तृकर्म अधिकार सार

मैं चित्स्वरूप आत्मा कर्ता हूँ और ये क्रोधादि भाव मेरे कर्म हैं। यह कर्ताकर्म भाव जब तक इस जीव को हो रहा है तब तक वह अज्ञानी है। किंतु जब ज्ञानज्योति प्रगट हो जाती है तब कर्ताकर्म की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है। और तब उस समय पौद्गलिक कर्मों का बंध भी नहीं होता है। इसका अभिप्राय यह है कि निश्चय नय की अपेक्षा आत्मा अपने शुद्ध भावों का ही कर्ता है किंतु अशुद्ध निश्चयनय से रागादि भाव कर्मो का और व्यवहारनय से पुद्गल कर्मों का कर्ता है। ऐसा श्रद्धान सम्यग्दृष्टि को हो जाता है। तत्पश्चात् वह सकल संयम को धारण करके निर्विकल्प ध्यान में स्थिर होने का पुरुषार्थ करता है। उस ध्यान में शुद्धोपयोग प्रगट हो जाता है। उस समय यह आत्मा कर्ताकर्म के व्यवहार से दूर हो जाता है फिर भी वहाँ अबुद्धिपूर्वक भावकर्म हो रहे हैं और पौद्गलिक कर्मों का आस्रव भी हो रहा है किन्तु जब सर्वथा मोह कर्म का अभाव हो जाता है तब दशवें गुणस्थान से ऊपर कर्तृकर्म की प्रवृत्ति सर्वथा समाप्त हो जाती है और तभी पौद्गलिक कर्मों का बंध भी मात्र एक साता प्रकृति रूप एक समय मात्र का रह जाता है जिसमें अनुभाग स्थिति न पड़ने से वह बंध ही नहीं कहलाता है। इसी बात को इस अधिकार में कहा है। कलश ६४ और ६५ में यह बात स्पष्ट की है कि "पुद्गल में परिणमनशक्ति विद्यमान है वह जिस रूप परिणमन करता है उसी का वह कर्ता होता है। ऐसे ही जीव में स्वयं ही परिणमन शक्ति विद्यमान है वह जीव अपने जिस भाव से परिणमन करता है उसी भाव का वह कर्ता माना जाता है अर्थात् पुद्गल कर्मों का उपादान पुद्गल है और रागादि भावों का उपादान आत्मा है। जब वह आत्मा रागादि से रहित शुद्ध आत्मतत्त्व का अनुभव करता है तब वह भावकर्म-द्रव्य कर्म के कर्तृत्व से रहित हो जाता है।

आगे चलकर श्री अमृतचन्द्र सूरि ने यह कहा है कि "जो महामुनि नयों के पक्षपात को छोड़कर अपने स्वरूप में तन्मय हो जाते हैं वे संपूर्ण संकल्प विकल्प से रहित होकर साक्षात् आत्मानुभवरूपी अमृत का पान करते हैं। इसी बात को कलशकाव्य ७० से लेकर ८९ तक स्पष्ट किया है। कि "एक नय कहता है जीव कर्मों से बंधा हुआ है, दूसरा नय कहता है जीव कर्मों से नहीं बंधा है, इस प्रकार चिच्चैतन्यस्वरूप आत्मा के सम्बन्ध में दोनों नयों का पक्षपात चलता रहता है किन्तु जो तत्त्ववेत्ता हैं अर्थात् जो सरागसंयम से ऊपर पहुँच कर वीतरागी महामुनि हो गये हैं, शुद्धोपयोग में लीन हैं उनके इन नयों का पक्षपात नहीं रहता है चूँकि वे निर्विकल्प ध्यान में स्थित हैं इसलिए उन्हें मात्र चिन्मय आत्मा का ही अनुभव आता है। इसी तरह एक नय कहता है जीव द्वेषी है, कर्ता है, भोक्ता है इत्यादि। दूसरा नय कहता है जीव द्वेषी नहीं है, कर्ता नहीं है, भोक्ता नहीं है। ये दोनों बातें नयों के पक्षपात रूप ही हैं किन्तु नयों के विकल्प से दूर हुए परमसमाधि में स्थिति महासाधु चिच्चैतन्यमात्र शुद्धात्मा का ही अनुभव करते हैं वे ही तत्त्ववेत्ता कहे जाते हैं। इसी बात को स्वयं आचार्य देव ने ९० वें काव्य में कह दिया है। आगे ९२ वें काव्य में कहते हैं कि वे ही महायोगी कर्मबन्ध की सन्तति का अभाव करके अपार ऐसे "समयसार" स्वरूप अपनी आत्मा का अनुभव करते हैं। कलश काव्य ९३ में कहा है कि जो निर्विकल्प अचल अवस्था को प्राप्त करके नयों के पक्ष से अतीत ऐसा समय (शुद्ध आत्मा) का स्तर है वही भगवान् है, पुण्यरूप है, पुराण पुरुष है, वही ज्ञान है, दर्शन है, और तो क्या वह एक ही सब कुछ है। इसलिए जब तक सविकल्प अवस्था है तब तक कर्तृकर्मप्रवृत्ति नष्ट नहीं हो सकती है क्योंकि कर्तृत्व और ज्ञातृत्व अर्थात् करना और जानना ये दोनों क्रियायें भिन्न-भिन्न हैं। निश्चयनय की अपेक्षा से ज्ञाता ज्ञाता ही है कर्ता नहीं है और कर्ता कर्ता ही है ज्ञाता नहीं है जब निश्चय नय के विषयभूत शुद्ध अवस्था का अनुभव किया जाता है तब निश्चय नय का भी विकल्प छूट जाता है उस समय जो ज्ञानज्योति प्रगट होती है वह कर्ताकर्म के भेद को समाप्त करके स्वयं ज्ञान स्वरूप आत्मा को पर से भिन्न शुद्ध बना देती है। इस प्रकार से इस कर्तृकर्म अधिकार में ४६ से ९९ तक कलश काव्य हैं।

पुण्यपापाधिकार

अथ पुण्यपापाधिकारः

अथैकमेव द्विपात्रीभूय पुण्यपापरूपेण प्रविशति—

द्रुतविलम्बित-वृत्तम्

तदथ कर्म शुभाशुभभेदतो, द्वितयतां गतमैक्यमुपानयन् ।
ग्लपित-निर्भर-मोहरजा अयं स्वयमुदेत्यवबोधसुधाप्लवः ॥१००॥

अथ शुभाशुभकर्मणोर्दृष्टान्तेनैक्यमुररीकरोति पद्यद्वयेन—

मन्दाक्रान्ता-वृत्तम्

एको दूरात्त्यजति मदिरां ब्राह्मणत्वाभिमानात्
अन्यः शूद्रः स्वयमहमति स्नाति नित्यं तयैव ।
द्वावप्येतौ युगपदुदरात् निर्गतौ शूद्रिकायाः
शूद्रौ साक्षात् अपि च चरतो जातिभेदभ्रमेण ॥१०१॥

उपजाति-वृत्तम्

हेतु-स्वभावानुभावाश्रयाणां सदाप्यभेदान्नहि कर्मभेदः ।
तद् बन्धमार्गाश्रितमेकमिष्टं, स्वयं समस्तं खलु बंधहेतु ॥१०२॥

अथ सर्वस्यापि कर्मणो बन्धहेतुत्वमुशन्ति—

स्वागता-वृत्तम्

कर्म सर्वमपि सर्वविदो यद्, बन्धसाधनमुशन्त्यविशेषात् ।
तेन सर्वमपि तत् प्रतिषिद्धं, ज्ञानमेव विहितं शिवहेतु ॥१०३॥

पुण्य-पाप-अधिकार

एक ही कर्म दो पात्र बनकर पुण्य-पाप रूप से प्रवेश करते हैं

भुजंगप्रयात छंद

वही कर्म पुण्यं जु पापं द्विभेदं,
वही कर्म जो एक रूपं सुप्राप्तं।
भरी मोहरूपी जु धूली नशे है,
स्वयं ज्ञानरूपी सुधांसु लेश है ॥१००॥

अब शुभ और अशुभ कर्म की दृष्टान्त द्वारा एकरूपता सिद्ध करते हैं—

भुजंग प्रयात छंद

द्वि पुत्रं सुसंगंहि शूद्री जने हैं—
सुविप्रं व शूद्रं द्विगेहं पले हैं।
तजे ब्रह्म मध्यं गहे शूद्र जानो—
भ्रमं जातिभेदं तथा कर्म मानो ॥१०१॥

अब पुण्य और पाप की एकरूपता को हेतु द्वारा सिद्ध करते हैं—

भुजंगप्रयात छन्द (वर्णिक)

स्व हेतु स्वभावं स्ववेदं सहायं,
सुचारो अभेदं, नहीं कर्मभेदं।
अतः बंध मार्गाश्रयं कर्म एकं,
वही कर्म सर्वं, स्वयं बंध हेतुं ॥१०२॥

अब सभी कर्म को आचार्य बंध का हेतु कहते हैं—

भुजंग प्रयात छंद (वर्णिक)

सभी कर्म को पूर्ण ज्ञानी कहे हैं,
वही बंध का हेतु सामान्य से है।
इसी से सभी कर्म को रोक ठानो,
यही ज्ञान ही मोक्ष का हेतु जानो ॥१०३॥

अथ कर्ममार्गनिराकरणे मोक्षावाप्ति विचकयति—

शिखरिणी-वृत्तम्

निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल,
प्रवृत्ते नैष्कर्म्ये न खलु मुनयः सन्त्यशरणाः।
तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरितमेषां हि शरणम्,
स्वयं विन्दन्त्येते परमममृतं तत्र निरताः ॥१०४॥

अथ ज्ञानस्य शिवहेतुत्वं विख्यापयति—

शिखरिणी-वृत्तम्

यदेतत् ज्ञानात्मा ध्रुवमचलमाभाति भवनं,
शिवस्यायं हेतुः स्वयमपि यतस्तच्छिव इति।
अतोऽन्यद् बन्धस्य स्वयमपि यतो बन्ध इति तत्,
ततो ज्ञानात्मत्वं भवनमनुभूतिर्हि विहितम् ॥१०५॥

अथ ज्ञानस्य वृत्तत्वमनुवर्ण्यते—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

वृत्तं ज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं सदा।
एकद्रव्यस्वभावत्वान्मोक्षहेतुस्तदेव तत् ॥१०६॥

अथान्याभिमतक्रियाकाण्डस्य वृत्तत्वं निरुणद्धि—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

वृत्तं कर्मस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं न हि।
द्रव्यान्तरस्वभावत्वात् मोक्षहेतुर्न कर्म तत् ॥१०७॥

अथ क्रियाकाण्डस्य मोक्षहेतुत्वं कुतो नेति जंजल्प्यते—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

मोक्ष-हेतु-तिरोधानात् बन्धत्वात् स्वयमेव च।
मोक्ष-हेतुतिरोधायि भावत्वात्तन्निषिध्यते ॥१०८॥

अब कर्म का मार्ग दूर होने पर मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन करते हैं

भुजंगप्रयात छंद (वर्णिक)

सभी कर्म पुण्यं व पापं निरोधं,
मुनी वृत्ति निष्कर्म ना हो अरक्षं ।
सदा लीन जो ज्ञान में वो शरण्यं,
स्वयं ज्ञान लीनं मुनी मोक्ष प्राप्तं ॥१०४॥

अब ज्ञान मोक्ष का कारण है—यह कहते हैं--

भुजंगप्रयात छन्द (वर्णिक)

यही आत्मज्ञानं हि ध्रौव्यं अकंपं,
स्वयं ज्ञानभासं यही मोक्षरूपं ।
तथा अन्य जो भी स्वयं हेतु बंधं,
अतः ज्ञानरूपं भुवं स्वानुभूतं ॥१०५॥

अब ज्ञान के चारित्रपने का वर्णन करते हैं—

भुजंग प्रयात छन्द (वर्णिक)

लहे ज्ञान दृष्टि स्वभावश्चरित्रं,
रहे सत्य ज्ञानं सदा सारभूतं ।
वही एक ही आत्म द्रव्य स्वभावं,
वही ज्ञान ही मोक्ष हेतु स्वरूपं ॥१०६॥

अब शुभाशुभ क्रिया मोक्ष का कारण नहीं है—यह कहते हैं—

भुजगप्रयात छन्द

सकर्म स्वभावं नहीं ज्ञानवृत्तं,
रहे भिन्न द्रव्य स्वभाव स्वरूपं ।
अतः पुण्य पापं सभी कर्म ये हैं,
नहीं मोक्ष का हेतु तत्त्वार्थ से है ॥१०७॥

अब क्रिया कांड मोक्ष का हेतु क्यों नहीं है—यह कहते हैं—

भुजंगप्रयात छन्द

वही कर्म जो मोक्ष हेतु ढके हैं,
वही बंध रूपं स्वयं ही कहे हैं ।
वही मोक्ष हेतू तिरोधायि रूपं,
जभी कर्म ही है निषेध स्वरूपं ॥१०८॥

अथ समस्तामपि कर्मतितिक्षां संलक्षयति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

सन्यस्तव्यमिदं समस्तमपि तत्कर्मैव मोक्षार्थिना,
संन्यस्ते सति तत्र का किल कथा पुण्यस्यपापस्य च ।
सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनान्मोक्षस्य हेतुर्भवन्,
नैष्कर्म्यप्रतिवद्धमुद्धतरसं ज्ञानं स्वयं धावति ॥१०९॥

अथ कर्मणाभावे ज्ञानभाव इति प्ररूपयति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

यावत्पाकमुपैति कर्मविरतिर्ज्ञानस्य सम्यङ् न सा,
कर्मज्ञानसमुच्चयोऽपि विहितस्तावन्न काचित् क्षतिः ।
किन्त्वत्रापि समुल्लसत्यवशतो यत् कर्मबंधाय तत्,
मोक्षाय स्थितमेकमेव परमं ज्ञानं विमुक्तं स्वतः ॥११०॥

अथ नयावलम्बित्वमुपशाम्यति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

मग्नाः कर्मनयावलम्बनपराः ज्ञानं न जानन्ति ये
मग्नाः ज्ञाननयैषिणोऽपि यदति स्वच्छन्दमंदोद्यमाः ।
विश्वस्योपरिते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रसादस्य च ॥१११॥

अथ ज्ञानज्योतिषो विजृम्भणं वंभणीति—

मन्दाक्रान्ता-वृत्तम्

भेदोन्मादं भ्रमरसभरान्नाटयत्पीतमोहं
मूलोन्मूलं सकलमपि सत्कर्म कृत्वा वलेन ।
ऐलोन्मीलत् परमकलया सारमारब्धकेलि-
ज्ञानज्योतिःकवलिततमः प्रोज्जजृम्भे भरेण ॥११२॥

इति पुण्यपापाधिकारः समाप्तः

अब मोक्षार्थी को समस्त कर्म त्यागने योग्य हैं यह कहते हैं—

विश्नुपद छन्द (मात्रिक)

मोक्षार्थी को त्याज्यहि, करने योग्य कर्म सारा।
कर्म त्याग होने पर फिर नहिं पुण्य-पाप न्यारा ॥
सम्यक्त्वादि स्वभाव रूप, शिव हेतु कहा जाता।
फिर निष्कर्म अवस्था में खुद ज्ञान दौड़ आता ॥१०९॥

अब कर्मों के अभाव होने पर ज्ञान भाव होता है यह कहते हैं—

विश्नुपद छंद (मात्रिक)

जब तक कर्म विरक्ति ज्ञान से, सम्यक पूर्ण नहीं
तब तक कर्म ज्ञान मिश्रण में कोई विरोध नहीं
किन्तु विवश में कर्म प्रकट जब बंध हेतु वह है।
परम ज्ञान ही मोक्ष हेतु इक स्वतः विमुक्त रहे ॥११०॥

अब नयों का अवलम्बन छुड़ाने का उपदेश देते हैं—

विश्नुपद छंद (मात्रिक)

केवल क्रियाकांड में तत्पर, ज्ञान बिना डूबे।
मात्र स्वच्छन्द चरित्र प्रमादी ज्ञानेच्छुक डूबे।
पक्ष रहित जो स्वयं ज्ञानमय कर्म नहीं करते,
अप्रमाद वश चारितयुत हो, ये जग से तिरते ॥१११॥

अब ज्ञान ज्योति कर्मों की नाशक है उसके बढ़ाने का उपदेश देते हैं—

विश्नुपद छंद (मात्रिक)

मोह मद्य पीकर नर को मद-भ्रम से नचा रहा।
ऐसे सभी कर्म बल पूर्वक जड़युत हटा रहा।
सहज प्रकट हो पूर्ण ज्ञानमय परम कला संगे।
केलि करें तम हरें परं वह ज्ञान ज्योति प्रकटे ॥११२॥

पुण्य-पाप अधिकार समाप्त

पुण्यपाप अधिकार सार

कर्म के शुभ अशुभ की अपेक्षा दो भेद हैं। जब यह ज्ञान जीव की कर्ताकर्म प्रवृत्ति को दूर कर देता है तब यही ज्ञान इन दोनों कर्मों में भेद न करता हुआ ऐक्य–अभेद स्थापित कर देता है अर्थात् दोनों को एक रूप देखता है। यह अवस्था तभी आती है जब मोहनीय कर्मरूपी धूली झड़कर दूर हो जाती है। शुभ कर्म भी बंध की दृष्टि से हेय ही है। सच

पूछा जाय तो मोक्ष का हेतु यहाँ ज्ञान है जो कि वीतरागी महामुनि के ही प्रगट होता है। इसी बात को स्वयं श्री अमृतचंद्र सूरि अपने १०४वें काव्य में कहते हैं—पुण्य और पाप संपूर्ण कर्मों का आस्रव रुक जाने पर मुनिराज निष्कर्म अवस्था में प्रवृत्ति करते हैं इसलिए वे अशरण नहीं हैं। उस समय ज्ञान में ज्ञान स्थित होता जाता है यही तो निश्चय चारित्र का लक्षण है। उसी समय जिनकी आत्मा अभेद रत्नत्रय से परिणत हो रही है ऐसे महामुनि परम अमृत का आस्वादन करते हैं।

इस काव्य से यह भी स्पष्ट है कि पुण्य पाप से रहित शुद्ध अवस्था मुनियों के ही प्रगट होती है गृहस्थों के नहीं। समयसार के कर्ता श्री कुंदकुंददेव ने भी मूलग्रन्थ में इसी बात को स्पष्ट किया है। यह अवस्था वीतरागी महामुनि के परमसमाधि के समय ही प्रगट होती है। न कि सरागसंयमी मुनि को। क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति आहारक शरीर आदि शुभ प्रकृतियों का बंध आठवें गुणस्थान के छठे भाग तक माना गया है। जब तक ज्ञान परिपूर्णतया स्थिरता को (शुक्लध्यान अवस्था) को प्राप्त नहीं हो जाता है तब तक कर्मों का बंध तो दशवें गुणस्थान तक होता ही है आगे ग्यारहवें से ही छुटता है।

आगे १११ वें कलश में कहते हैं कि जो एकांत क्रिया काण्ड को ही मोक्ष का साधन मान लेते हैं वे ज्ञान को नहीं जानते हैं अतः वे भी संसार में ही डूबे हुए हैं। तथा जो ज्ञान की दुहाई देते हुए स्वैराचारी बन जाते हैं क्रिया काण्ड महाव्रत समिति, गुप्ति तपश्चरण आदि का अवलंबन नहीं लेते हैं वे भी मन्द उद्यमी संसार में ही डूबे हुए हैं किंतु इससे विपरीत जो प्रमाद को छोड़कर संयमी हो जाते हैं, अप्रमत्त दशा में व्रत, समिति आदि के विकल्प को छोड़कर निर्विकल्प ध्यान का अवलंबन लेते हैं। वे ही महासाधु पुण्य पाप से परे होकर शुद्धोपयोग रूप तृतीय भूमिका को प्राप्त करके पुण्यपाप के बंधन से छूटकर निर्बन्ध सिद्ध अवस्था को प्राप्त करने के लिए अधिकारी होते हैं। यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने की है कि छठे गुणस्थानवर्ती मुनि-आचार्य, उपाध्याय, साधु अर्थात् आज के मुनिराज इन पुण्य-पाप से परे शुद्धोपयोगी नहीं हो सकते हैं। तो फिर श्रावकों अथवा अविरती सम्यग्दृष्टियों के लिए पुण्य को भी हेय कह देना गलत है। छठे सातवें गुणस्थान तक पुण्यक्रियायें उपादेय हैं तब चौथे पाँचवें गुणस्थान वालों के लिए तो उपादेय हैं ही हैं। हाँ, इन सबके लिए पाप क्रियायें सर्वथा हेय ही हैं। आगे चलकर पुण्य क्रियायें ध्यान में स्वयं छूट जाती हैं। तभी पुण्य-पाप एक कोटि में आ जाते हैं। इस अधिकार में १०० से ११२ तक कलश काव्य हैं।

आस्रवाधिकार

• •

अथास्रवाधिकारः

अथास्रवमाश्रयति—

द्रुतविलम्वित-वृत्तम्

अथ महामदनिर्भरमन्थरं
समररङ्गपरागतमास्रवम् ।
अयमुदारगभीरमहोदयो
जयति दुर्जयबोधधनुर्धरः ॥११३॥

अथ ज्ञाननिर्वृत्तं भावं समुत्साहयति—

शालिनी-वृत्तम्

भावो रागद्वेषमोहैर्विना यो
जीवस्य स्यात् ज्ञाननिर्वृत एव ।
रुन्धन् सर्वान् द्रव्यकर्माश्रवौघान्
एषोऽभावः सर्वभावास्रवाणाम् ॥११४॥

अथ ज्ञानिनो निरास्रवत्वं श्रद्दधीति—

उपजाति-वृत्तम्

भावास्रवाभावमयं प्रपन्नो
द्रव्यास्रवेभ्यो स्वत एव भिन्नः ।
ज्ञानी सदा ज्ञानमयैकभावो
निरास्रवो ज्ञायक एक एव ॥११५॥

अथ ज्ञानिनो निरास्रवत्वं नियम्यते—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

सन्न्यस्यन् निजवुद्धिपूर्वमनिशं रागं समग्रं स्वयं
वारंवारमवुद्धिपूर्वमपि तं जेतुं स्वशक्ति स्पृशन् ।
उच्छिन्दन् परवृत्तिमेव सकलां ज्ञानस्य पूर्णो भवन्
आत्मा नित्यनिरास्रवो भवति हि ज्ञानी यदा स्यात्तदा ॥११६॥

आस्रव-अधिकार

अब आस्रव के जीतने वाले ज्ञान की प्रशंसा करते हैं—

स्रग्विणी छंद (वर्णिक)

ये हि आस्रव महामत्त से पूर्ण हैं
युद्ध की रंग-भू में प्रमत्तः खड़े।
धीर औदार्य तेजो प्रतापी महा
तन्यधारी अजित् बोध आस्रव जिता ॥११३॥

अब ज्ञान से उत्पन्न होने वाले भाव का वर्णन करते हैं—

स्रग्विणी छंद (वर्णिक)

रागद्वेषादि को छोड़ जो भाव हैं
ज्ञान से ही सदा वो सुनिर्वृत्त हैं।
द्रव्य कर्म स्वभावो सदा नाशता
भाव आस्रव यही नित्य ही रोकता ॥११४॥

अब ज्ञानी के आस्रव रहितपने का वर्णन करते हैं—

स्रग्विणी छंद (वर्णिक)

विज्ञ जो भाव आस्रव कभी ना लहें
वो सदा द्रव्य आस्रव विना ही रहे।
ज्ञानयुत भाव से युक्त ज्ञानी कहे
वो निरास्रव सदा एक ज्ञाता रहे ॥११५॥

अब ज्ञानी नियम से निरास्रव होता है—यह कहते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

जब ज्ञानी जीव स्वबुद्धि पूर्व, सब राग स्वयं नित दूर करें।
अबुद्धि सहित सब राग मिटन को पुनः पुनः पुरुषार्थ करें॥
वह ध्यानी ज्ञान विकल्प रूप, सब परिणति कर उच्छेद किया।
तब पूर्णभाव से सहित सदा के लिये निरास्रव शुद्ध हुआ ॥११६

अथ ज्ञानिनो द्रव्यप्रत्यये सति न निरास्रवत्वमिति पूर्वपक्षपूर्वकं पद्यद्वयेन प्रत्युत्तरयति—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

सर्वस्यामेव जीवत्यां द्रव्यप्रत्ययसन्ततौ ।
कुतो निरास्रवो ज्ञानी नित्यमेवेति चेन्मति ॥११७॥

तत्रोत्तरयति—

मालिनी-वृत्तम्

विजहति न हि सत्तां प्रत्ययाः पूर्वबद्धाः
समयमनुसरन्तो यद्यपि द्रव्यरूपाः ।
तदपि सकल-राग-द्वेष-मोह-व्युदासात्
अवतरति न जातु ज्ञानिनः कर्मबन्धः ॥११८॥

अथ पुनर्बन्धाभावो विभाव्यते—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

रागद्वेषविमोहानां ज्ञानिनो यदसम्भवः ।
तत एव न बन्धोऽस्य ते हि बन्धस्य कारणम् ॥११९॥

अथ बन्धविधुरत्वं विधीयते—

वसंततिलका-वृत्तम्

अध्यास्य शुद्धनयमुद्धतबोधचिन्हं
ऐकाग्र्यमेव कलयन्ति सदैव ये ते ।
रागादिमुक्तमनसः सततं भवन्तः
पश्यन्ति बन्धविधुरं समयस्य सारम् ॥१२०॥

अथ बन्धत्वमनुबध्नाति—

वसन्ततिलका-वृत्तम्

प्रच्युत्य शुद्धनयतः पुनरेव ये तु
रागादियोगमुपयान्ति विमुक्तबोधाः ।
ते कर्मबन्धमिह बिभ्रति पूर्वबद्ध-
द्रव्यास्रवैः कृतविचित्रविकल्पजालम् ॥१२१॥

अब ज्ञानी के द्रव्य कर्म की सत्ता होने पर निरास्रव कैसे ? इसका खुलासा करते हैं

तोटक छन्द (वर्णिक)

बुध के सब द्रव्य सुप्रत्यय हैं,
उसकी जब संतति नित्य रहे।
फिर भी वह शुद्ध निरास्रव क्यों,
यह प्रश्न उठे स्वयमेव अहो ॥११७॥

पूर्व प्रश्न के उत्तर स्वरूप इस छंद में वर्णन करते हैं—

तोटक छंद (वर्णिक)

सब द्रव्य सुप्रत्यय पूर्व बंधे—
उदयावलि काल प्रतीक्ष धरे।
नहिं सत्व तजे रति आदि नशे—
बुध के नहिं कर्म न बंध लखें ॥११८॥

अब ज्ञानी के राग द्वेष मोह के अभाव में कहते हैं—

तोटक छंद (वर्णिक)

रति आदि अभाव सुबुद्ध लहे,
इस कारण उसके बन्धन है।
यह वास्तव में सब बंधक हैं,
उसके रति आदिक कारण हैं ॥११९॥

अब बन्ध से रहितपने का वर्णन करते हैं—

तोटक छंद (वर्णिक)

नय ज्ञान सुलक्षण युक्त कहें
वह शुद्ध स्वरूप सुभव्य गहे।
नित एकपने निज को परखे
रति आदि विमुक्त स्वरूप लखें ॥१२०॥

अब कर्म बन्ध का कारण कहते हैं—

तोटक छंद (वर्णिक)

नय शुद्ध विमुक्त विमूढ़ हुए,
वह ही रति आदिक प्राप्त हुए।
फिर द्रव्य सु आस्रव पूर्व सधे,
सविकल्प समूहज कर्म बंधे ॥१२१॥

अथ बन्धाबन्धयोस्तात्पर्यं पंफुल्यते—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

इदमेवात्र तात्पर्यं हेयः शुद्धनयो न हि ।
नास्ति बन्धस्तदत्यागात् तत्त्यागात् बन्ध एव हि ॥१२२॥

अथ शुद्धनयस्यात्यागमामनुते—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

धीरोदारमहिम्न्यनादिनिधने बोधे निबध्नन् धृतिं ।
त्याज्यः शुद्धनयो न जातु कृतिभिः सर्वंकषः कर्मणाम् ॥
तत्रस्थाः स्वमरीचिचक्रमचिरात् संहृत्य निर्यद् बहिः ।
पूर्णज्ञानघनौघमेकमचलं पश्यन्ति शान्तं महः ॥१२३॥

अथ रागादीनामभावे किं स्यादित्यध्येति—

मन्दाक्रान्ता-वृत्तम्

रागादीनां झगिति विगमात् सर्वतोऽप्यास्रवाणां
नित्योद्यन्तं किमपि परमं, वस्तु संपश्यतोऽन्तः ।
स्फारस्फारैः स्वरसविसरैः प्लावयत् सर्वभावान्,
आलोकान्तादचलमतुलं ज्ञानमुन्मग्नमेतत् ॥१२४॥

इति आस्रवाधिकारः समाप्तः

अब बंध और अबन्ध का कारण कहते हैं—

तोटक छंद (वर्णिक)

यह शुद्ध सही नय हेय नहीं,
इसको न तजे फिर बंध नहीं।
नय शुद्ध तजे जब बंध सभी,
नहिं मोक्षपुरी फिर जात कभी १२२॥

अब शुद्ध नय का प्रभाव दिखाते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

जो धीर उदार अनादि निधन,
उत्कृष्ट ज्ञान में शांत हुआ।
सब कर्मो को निर्मूलन कर,
वह भव्य शुद्धनय धार लिया।
उसमें संस्थित निज किरणों को,
झट बाह्य दृष्टि से मोड़ लिया।
तब पूर्ण ज्ञान घन एक अचल,
निज शांत तेज को देख लिया ॥१२३॥

अब रागादि के अभाव से ज्ञान प्रकट होता है—यह कहते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

सर्व रूप रागादिक आस्रव का,
जब ही शीघ्र विनाश हुआ।
नित भासमान इक परम तत्त्व,
को अंतरंग में देख लिया।
जब नंतानंत स्वरस समूह से,
त्रैकालिक सब भाव लखा।
ऐसे ज्ञानी के अचल अतुल तब,
परम ज्ञान निज सूर्य दिखा ॥१२४॥

आस्रव अधिकार समाप्त

आस्रव अधिकार सार

यहाँ आस्रव को समर भूमि में आया हुआ महायोद्धा बनाया है और ज्ञान को दुर्जय धनुर्वर की संज्ञा दी है। वास्तव में वह ज्ञान कैसा है। सो आगे कलश ११४ वें में कहते हैं कि राग देष और मोह इन तीनों से रहित जो ज्ञान है वही ज्ञान सम्पूर्ण द्रव्य कर्मों का और सम्पूर्ण भावकर्मों का अभाव करने वाला है। क्योंकि रागद्वेष मोह को ही भावास्रव कहते हैं और इनके अभाव से हुआ जो भाव है वह द्रव्यास्रव से भिन्न ही रहेगा। यही कारण है कि ज्ञानी हमेशा आस्रव रहित ज्ञानमात्र एक भाव का भोक्ता होने से ज्ञायक कहलाता है। कलश ११६ वें में कहा है कि जहाँ पर वुद्धिपूर्वक राग तो है ही नहीं, अवुद्धि पूर्वक भी राग जो कि श्रेणी में स्थित मुनियों के विद्यमान है उसको भी जीतने का उद्यम चल रहा वहीं पर आगे चलकर सर्वथा निरास्रव आत्मा को ही ज्ञानी संज्ञा दी है। यह अवस्था केवली भगवान् में ही घटित होती है। जैसा कि स्पष्ट है—"ज्ञानस्य पूर्णो भवन्नात्मा नित्य निरास्रवो भवति हि ज्ञानी यदा स्यात्तदा।" अथवा जव निर्विकल्प ध्यान होता है, तव राग द्वेष मोह वुद्धि में नहीं रहते हैं। उस समय भी ज्ञानी संज्ञा सार्थक है इस वात को श्रीजयसेनाचार्य स्वीकार करते हैं। आगे कलश ११९-१२० में कहते हैं कि ज्ञानी साधु के रागद्वेष मोह का होना असंभव है और इसीलिए उनके कर्मो का वंध नहीं है, जो रागादि से रहित है वे ही वंध से रहित समय के सार को देखते हैं। इस कथन से भी निर्विकल्प ध्यान में स्थित शुद्धोपयोगी मुनि को ही ज्ञानी कहा जा सकता है। आगे यही वात और भी स्पष्ट हो रही है कलश १२१ में जो शुद्धनय से च्युत होकर अर्थात् शुद्धनय के विपयभूत शुद्ध आत्मा तत्त्व का अवलंवन छोड़कर रागद्वेष आदि भाव करते हैं वे कर्मो का वंध करते ही रहते हैं। इससे यही सार निकलता है कि यहाँ रागद्वेष आदि विभाव भावों से रहित शुद्ध आत्म तत्त्व के अनुभव में लीन शुद्धोपयोगो मुनि ही विवक्षित हैं। वे ही ११ वें, १२ वें गुणस्थान में पहुँच कर कर्मों के आस्रव वंध को रोकते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि अविरत सम्यग्दृष्टि के अनन्तानुवन्धी और दर्शन मोहनीय जन्य रागद्वेष का अभाव होने से उसके तन्निमित्तक आस्रव वंध नहीं है। देशविरत के अप्रत्याख्यानावरण जन्य रागद्वेष का अभाव होने से तन्निमित्तक आस्रव वंध नहीं है। इतने अंश में आस्रव का अभाव होने से उसे भी कथंचित् ज्ञानी कह सकते हैं किंतु यहाँ पर समयसार का ज्ञानी निर्विकल्प ध्यानी ही है ऐसा समझना इस तरह ११२ ने १२४ तक कलश काव्यों में यह अधिकार वर्णित है।

संवराधिकार

● ●

अथ संवराधिकारः

अथ संवरं सूचयति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

आसंसार-विरोधिसंवरजयैकान्तावलिप्तस्तव
न्यक्कारात् प्रतिलब्धनित्यविजयं संपादयत्संवरम् ।
व्यावृत्तं पररूपतो नियमितं सम्यक् स्वरूपे स्फुरत्
ज्योतिश्चिन्मयमुज्ज्वलं निजरसप्राग्भारमुज्जृम्भते ॥१२५॥

अथ ज्ञानरागयोः स्वरूपं वेभिद्यते—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः कृत्वा विभागं द्वयो–
रन्तर्दारुणदारणेन परितो ज्ञानस्य रागस्य च ।
भेदज्ञानमुदेति निर्मलमिदं मोदध्वमध्यासिताः
शुद्धज्ञानघनौघमेकमधुना सन्तो द्वितीयच्युताः ॥१२६॥

अथ शुद्धात्मोपलम्भात् संवरं विवृणोति—

मालिनी-वृत्तम्

यदि कथमपि धारावाहिना बोधनेन
ध्रुवमुपलभमानः शुद्धमात्मानमास्ते ।
तदयमुदयदात्मारामात्मानमात्मा
परपरणतिरोधाच्छुद्धमेवाभ्युपैति ॥१२७॥

संवराधिकार

अब संवरका वर्णन करते हैं—

छप्पय छंद (मात्रिक)

नंत काल से निज विरोधि संवर जीते हैं,
पक्ष सहित आस्रव तज उस पर विजय करे हैं।
ऐसे संवर धरे भिन्न पर द्रव्यों से हैं,
निज में स्थिर अतिशय शोभित स्वच्छ दिखे हैं,
निज स्वरस भारसे पूर्ण जो, ऐसी आत्म ज्योति जगे।
शिव विभूति को प्राप्त करके सदा 'अभय' गुण को भजे ॥१२५

अब ज्ञान और राग का स्वरूप भिन्न-भिन्न है—यह कहते हैं—

छप्पय छन्द (मात्रिक)

ज्ञान सुचेतन रूप राग जड़ता को धारा।
दोनों के विच होय तीक्ष्ण छैनी से न्यारा ॥
भेद ज्ञान निर्मल उत्पन्न हुआ है जब ही।
हे सत्पुरुषो ! रागादिक से च्युत हो तब ही ॥
इस समय शुद्ध निज ज्ञान-घन, है स्वरूप इक रूप ही।
भेद ज्ञान आश्रय करें जब आनन्द अनुभूति जभी ॥१२६॥

अब शुद्धात्मा की प्राप्ति से संवर होता है—यह कहते हैं—

छप्पय छन्द (मात्रिक)

यदि यह आत्मा धारावाही ज्ञानहि द्वारा।
किसी तरह नित शुद्धातम उपलब्धि निहारा ॥
फिर यह जो भी आत्म सुखामृत प्रकट हुआ है।
पर परणति के रुक जाने से शुद्ध हुआ है ॥
अत्यन्त शुद्धि की प्राप्ति जब, आत्म गुणों में होत है।
स्फटिक मणि सम आत्म में तब ज्ञान का हि उद्योत है ॥१२७

अथ कर्ममोक्षं कक्षीकरोति—

मालिनी-वृत्तम्

निजमहिमरतानां भेदविज्ञानशक्त्या
भवति नियतमेषां शुद्धतत्त्वोपलम्भः ।
अचलितमखिलान्यद्रव्यदूरे स्थितानां
भवति सति च तस्मिन् अक्षयः कर्ममोक्षः ॥१२८॥

अथ संवरं विवृणोति—

उपजाति-वृत्तम्

संपद्यते संवर एष साक्षात् शुद्धात्मतत्त्वस्य किलोपलम्भात् ।
स भेदविज्ञानत एव तस्मात् तद्भेदविज्ञानमतीव भाव्यम् ॥१॥

अथ भेदविज्ञानमाज्ञापयति—

उपजाति-वृत्तम्

भावयेद् भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया ।
तावत् यावत् पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते ॥१३०॥

अथ भेदज्ञानाज्ञानयोः सिद्धि प्रति हेतुकत्वाहेतुकत्वे निर्णयति—

उपजाति-वृत्तम्

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन ।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥१३१॥

अब शुद्धात्मा की प्राप्ति से ही मोक्ष होता है—यह कहते हैं—

छप्पय छन्द (मात्रिक)

भेद ज्ञान के बल से निज महिमा में रत जो।
उन्हें नियम से शुद्धतत्त्व की प्राप्ति हुई सो ॥
तथा अनन्तर अचल रूप से पर द्रव्यों को।
अपने से ही भिन्न समझ कर दूर रहे वो ॥
जो अन्य द्रव्य से सर्वदा, निस्पृहपन से है जुदा।
उन भव्यों के कर्म का ही 'अक्षय मोक्ष' कहे सदा ॥१२८॥

अब शुद्ध आत्मोपलब्धि से संवर और भेद विज्ञान से शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है—यह कहते हैं—

चामर छन्द (वर्णिक)

द्रव्यदृष्टि शुद्ध आत्म तत्त्व को सदा गहे
शुद्ध तत्त्व प्राप्ति से हि कर्म का निरोध है ॥
और शुद्ध आत्म तत्त्व भेद ज्ञान से कहे
भव्य भेद ज्ञान रूप भावना सदा लहे ॥१२९॥

अब भेद विज्ञान की निरन्तर भावना करने की प्रेरणा करते हैं

चामर छन्द (वर्णिक)

ज्यों न अन्य भाव रिक्त ज्ञान ज्ञान में रहे
भेद ज्ञान त्यों अखंड रूप ध्यान में रहे।
ज्ञान ध्येय रूप से, अभेद शुद्ध को गहे
मोक्ष में जभी अकंप रूप से सदा रहे ॥१३०॥

अब भेद विज्ञान से ही सिद्ध होते हैं—यह कहते हैं—

चामर छन्द [वर्णिक]

भेद ज्ञान से हि सिद्ध हो रहे, हुए सदा।
ज्ञान के विना न कोइ मुक्त हो सके कदा।
कोइ भी सुधी प्रवीण भेद ज्ञान से छुटे।
वे हि भेद ज्ञान के अभाव से सदा बंधे ॥१३१॥

अथ ज्ञाने ज्ञानव्यवस्थाकारणं कलयति—

मन्दाक्रान्ता-वृत्तम्

भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलम्भा-
द्रागग्रामप्रलयकरणात्कर्मणां संवरेण ।
बिभ्रत्तोषं परमममलालोकमम्लानमेकं
ज्ञानं ज्ञाने नियतमुदितं शाश्वतोद्योतमेतत् ॥१३२॥

इति संवराधिकारः समाप्तः

अब रागाभाव से ज्ञान में ज्ञान स्थित होता है, यह कहते हैं—

मुक्तक छन्द [मात्रिक]

जिस भेदज्ञान अनुभूति मात्र से,
शुद्ध तत्त्व की प्राप्ति कहे।
उस शुद्धतत्त्व उपलब्धि मात्र से,
राग समूह विलीन रहे
'अभयमती' रागादि प्रलय से
विधि के संवर से ज्ञान कहे
जो शांत अमल विकसित अकंप
इक ज्ञान रूप उद्योत रहे ॥१३२॥

संवर अधिकार समाप्त

संवर अधिकार सार

अनादि काल से आस्रव का जीवात्मा के साथ संबंध चला आ रहा होने से यह आस्रव यद्यपि दुर्जेय है फिर भी संवर इसके ऊपर विजय प्राप्त कर लेता है। वह संवर पररूप से दूर होकर अपने आत्म स्वरूप में स्फुरायमान होता हुआ चिन्मय ज्योति स्वरूप है। अर्थात् आत्मा उससे भिन्न नहीं है। आत्मा चिद्रूप है और आस्रव जड़रूप हैं द्रव्यकर्मों का उपादान तो जड़पुद्गल है ही है रागादि भाव कर्म भी द्रव्यकर्मों के उदय से ही होते हैं अतः वे भी कथंचित् जड़ कह दिये जाते है चूँकि आत्मा का स्वरूप न होने से अनात्मरूप है। यह भेदज्ञान ही ज्ञानस्वरूप आत्मा और जड़स्वरूप आस्रव इन दोनों का विभाग कर देता है। इसलिये श्री अमृतचंद्रसूरि का कहना है कि यदि कोई मुनि नाना उपाय करके जैसे तैसे भी भेदज्ञान को धारावाही चला लेते हैं तो वे मुनि निश्चित ही शुद्ध आत्मा की अनुभूति में तल्लीन होकर संपूर्ण परपरिणति को रोक देते हैं और शुद्धोपयोग में स्थित हुए शुद्ध आत्मा को प्राप्त कर लेते हैं। इसी बात को पुष्ट करते हुए १२९वें काव्य में कहते हैं कि शुद्धात्मा की उपलब्धि होने से ही संवर होना है और वह शुद्धात्मा की उपलब्धि भेद विज्ञान से ही होती है इसलिये वह भेद विज्ञान अतिशय रूप से भावित करने योग्य हैं। उस भेद विज्ञान को कब तक भाते रहना। सो ही कहते

हैं अविच्छिन्न धाराप्रवाह रूप से तब तक भाते रहना कि जब तक यह ज्ञान पर से छूटकर अपने आप में ही प्रतिष्ठित न हो जावे। क्योंकि जितने भी महापुरुष सिद्ध हुए हैं वे सब इस भेद विज्ञान से ही सिद्ध हुए हैं और जितने भी संसारी प्राणी कर्मों से बंधे हुये हैं वे सभी इसके अभाव में ही बंधे हुए हैं। मूल ग्रन्थ समयसार में भी आचार्य कुंदकुंददेव ने इस संवर का क्रम बताते हुए इसे सर्वपरिग्रह त्यागी महामुनियों में ही माना है। यहां पर भेद विज्ञान से आत्मा और शरीर आदि पर को भिन्न कह देना समझ लेना या श्रद्धान कर लेना मात्र ही नहीं है प्रत्युत् अपने उपयोग में भिन्न करके पर से उपयोग को हटाकर उसमें तन्मय हो जाना ही है। इस अधिकार में १२५ से १३२ तक कलश काव्य है।

निर्जराऽधिकार

● ●

अथ निर्जराऽधिकारः

अथ निर्जरानिरूपणमुज्जृम्भते—

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

रागाद्यास्रवरोधतो निजधुरां धृत्वा परः संवरः
कर्मागामि समस्तमेव भरतो दूरान्निरुन्धन् स्थितः।
प्राग्बद्धं तु तदेव दग्धमधुना व्याजृम्भते निर्जरा
ज्ञानज्योतिरपावृतं न हि यतो रागादिभिर्मूर्च्छति ॥१३३॥

अथ ज्ञानसामर्थ्यं समुत्थापयति—

उपजातिवृत्तम्

तज्ज्ञानस्यैव सामर्थ्यं विरागस्यैव वा किल।
यत्कोऽपि कर्मभिः कर्म भुञ्जानोऽपि न बध्यते ॥१३४॥

अथ ज्ञानिनो विषयसेवकत्वेऽप्यसेवकत्वं सिञ्चयति—

रथोद्धतावृत्तम्

नाश्नुते विषयसेवनेऽपि यत्
स्वं फलं विषयसेवनस्य ना।
ज्ञानवैभवविरागताबलात्
सेवकोऽपि तदसावसेवकः ॥१३५॥

अथ सम्यग्दृष्टेः शक्तिः संयुज्यते—

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः
स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या।
यस्माद् ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च
स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात् सर्वतो रागयोगात् ॥१३६॥

निर्जरा-अधिकार

अब निर्जरा का वर्णन करते हैं—

पद्मावती छंद (मात्रिक)

रागादिक आस्रव रुकने से निज धुराधार सँवर मन मोहे ।
कर्म अगामी सभी दूर से, कर निरोध अतिशय युत सोहे ।।
पूर्वबद्ध जो कर्म नाश को निर्जर रूपी अग्नि बढ्यो है ।
ज्ञान ज्योति जब प्रकट हुई तब रागादिक मूर्च्छितन कियो है।।१३३

अब ज्ञान की सामर्थ्यता का वर्णन करते हैं—

द्रुतविलम्बित (सुन्दरी) छंद (वर्णिक)

यह हि ज्ञान सु शक्ति हि निश्चयं अरु विरागपना महिमा स्वयं ।
जब सुभव्य स्वभोग सदा करे, फिर वही निज कर्म नहीं धरे ।।१३४

अब ज्ञानी विषयों का सेवक होने पर भी असेवक है, यह कहते हैं—

सुन्दरी छंद (वर्णिक)

विषय भोगहि में रमता रहा-
फिर जभी फल ना उसका लहा ।
यह हि ज्ञान-विराग महान है
विषय सेय न सेवक वो रहे ।।१३५।।

अब सम्यग्दृष्टि की शक्ति का वर्णन करते हैं—

पद्मावती छन्द (मात्रिक)

सदृष्टि जीव जब ज्ञान और, वैराग्य शक्ति निश्चित ही धारे ।
वस्तु रूप अनुभव करने को, निज से रस पर रूप निवारे ।।
तत्त्वरूप से स्वपर भेद को, शीघ्र जानकर आत्म निहारे ।
निज में रहकर सब प्रकार से, राग त्याग कर हुए निराले ।।१३६

अथ रागिणः सम्यक्त्वराहित्यमुच्यते—

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातु बन्धो न मे स्यात्
इत्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु ।
आलम्बन्तां समितिपरतां ते यतोऽद्यापि पापाः
आत्मानात्मावगमविरहात् सन्ति सम्यक्त्वरिक्ताः ॥१३७॥

अथ रागिणो भ्रान्ति वीभास्यते—

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

आसंसारात्प्रतिपदममी रागिणो नित्यमत्ताः
सुप्ता यस्मिन्नपदमपदं तद्विबुध्यध्वमन्धाः ।
एतैतेतः पदमिदमिदं यत्र चैतन्यधातुः
शुद्धः शुद्धः स्वरसभरतः स्थायिभावत्वमेति ॥१३८॥

अथ तत्पदास्वादनं स्वदते—

उपजाति वृत्तम्

एकमेव हि तत् स्वाद्यं विपदामपदं पदम् ।
अपदान्येव भासन्ते पदान्यन्यानि यत्पुरः ॥१३९॥

अथात्मज्ञानयोरेकत्वं नेनीयते—

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

एकं ज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन्
स्वादं द्वन्द्वमयं विधातुमसहः स्वां वस्तुवृत्तिं विदन् ।
आत्मात्मानुभवानुभावविवशो भ्रश्यद्विशेषोदयं
सामान्यं कलयत् किलैष सकलं ज्ञानं नयत्येकताम् ॥१४०॥

अथ संवेदनव्यक्तिमवनीस्वद्यते—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

अच्छाच्छाः स्वयमुच्छलन्ति यदिमाः संवेदनव्यक्तयः
निष्पीताखिलभावमण्डलरसप्राग्भारमत्ता इव ।
यस्माद्भिन्नरसः स एष भगवान् एकोऽप्यनेकीभवन्
वल्गत्युत्कलिकाभिरद्भुतनिधिश्चैतन्यरत्नाकरः ॥१४१॥

जिनको आत्मा और अनात्मा का ज्ञान नहीं वे सम्यक्त्व रहित हैं—

पद्मावती छन्द (मात्रिक)

सम्यग्दृष्टि रहूं न कभी मम, बंध होय यह कोई विचारे ।
इस प्रकार से रागी होकर, मानयुक्त मुख ऊँचा काढ़े ।।
सत आचार समिति पालन में, तत्पर होकर आश्रय लेवे ।
जब विमूढ़ को आत्म अनात्महि ज्ञान शून्य सम्यक्त्व न होवे।।१३७

राग इस जीव का पद नहीं है, किन्तु चैतन्य ही इसका पद है—

पद्मावती छन्द (मात्रिक)

नंत काल से पद पद पर नित, मत्त हुए रागी ये प्राणी ।
जिस पद में सोते वह निज पद नहिं है नहिं है सोचो प्राणी ।।
अरे ! अंध प्राणी जागो रे, आओ यह ही पद तेरा है ।
जहाँ शुद्ध चेतन रस के, स्थायि भाव को प्राप्त हुआ है ।।१३८

आत्मा ही निजपद है, वही अनुभव करने योग्य है—

सुन्दरी छन्द (वर्णिक)

जब विपत्ति हि का यह थान है, अरु सभी पद ही नहिं मान है ।
अपद ही जिसमें प्रतिभास है, इक वही पद आत्म विकास है ।।१३९

आत्मा और ज्ञान की एकता का वर्णन करते हैं—

नाराच छन्द (वर्णिक)

तदा स्वभाव ज्ञान पूर्ण स्वाद प्राप्त हो रहा ।
सराग मिश्र द्वंद स्वाद त्याग आत्म को भजा ।।
निजात्मभूति स्वाद युक्त जो विशेष-गौण है ।
यही स्वभाव पूर्ण ज्ञान, एक रूप प्राप्त है ।।१४०।।

निर्मल संवेदन की व्यक्ति का वर्णन करते हैं—

नाराच छन्द [वर्णिक]

विशेष स्वच्छ ज्ञान वृत्ति से स्वयं प्रकाश है ।
प्रकृष्ट पूर्ण अर्थ का समूह स्वाद भास है ।।
अभिन्न एक रूप अद्भुतं अनेक रूप है ।
यही निजी समुद्र ज्ञान के तरंग युक्त है ।।१४१।।

अथ ज्ञानान्येषां कर्मणां क्लेशत्वमाकर्षति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः
क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरम् ।
साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयम्
ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥१४२॥

अथ मुक्तेर्दुष्प्राप्यत्वं प्रथयति—

द्रुतविलम्बितवृत्तम्

पदमिदं ननु कर्मदुरासदं, सहजबोधकलासुलभं किल ।
तत इदं निजबोधकलाबलात्, कलयितुं यततां सततं जगत्॥१४३

अथ ज्ञानिनोऽपरस्याकिञ्चित्करत्वं युनक्ति—

उपजाति-वृत्तम्

अचिन्त्यशक्तिः स्वयमेव देवः चिन्मात्रचिन्तामणिरेष यस्मात् ।
सर्वार्थसिद्धात्मतया विधत्ते ज्ञानी किमन्यस्य परिग्रहेण ॥१४४॥

वसंततिलका-वृत्तम्

इत्थं परिग्रहमपास्य समस्तमेव,
सामान्यतः स्वपरयोरविवेकहेतुम् ।
अज्ञानमुज्झितुमना अधुना विशेषात्,
भूयस्तमेव परिहर्तुमयं प्रवृत्तः ॥१४५॥

अथ ज्ञानिनामपरिग्रहत्वमुल्लिखति—

स्वागतावृत्तम्

पूर्वबद्धनिजकर्मविपाकात् ज्ञानिनो यदि भवत्युपभोगः ।
तद् भवत्वथ च रागवियोगात् नूनमेति न परिग्रहभावम् ॥१४६

अथ विरक्ति गृह्णाति—

स्वागतावृत्तम्

वेद्यवेदकविभावचलत्वात् वेद्यते न खलु कांक्षितमेव ।
तेन कांक्षति न किंचन विद्वान् सर्वतोऽप्यतिविरक्तिमुपैति ॥१४७

आत्म ज्ञान के बिना सर्व क्रियाएँ निष्फल हैं—

नाराच छन्द [वर्णिक]

विमोक्ष शून्य कार्य दुष्करं स्वयं हि क्लेश कं।
महाव्रतं तपं सु-भार पीडितं चिरं दुखं ॥
सदा प्रमोक्ष रूप ही निराकुलं स्व संविदं।
यही सु-ज्ञान भाव के बिना न मोक्ष प्राप्तकं ॥१४२॥

मुक्ति प्राप्ति महा दुर्लभ है यह बताते हैं—

घत्ता छन्द [मात्रिक]

निश्चय ही यह पद, कर्म दुरासद, ज्ञानकला के सुलभ रहे।
इसलिये यत्न कर, सहज ज्ञान बल से, जग निर्मल मोक्ष लहे॥१४३

आत्मा स्वयं अचिन्त्य शक्ति वाला है, यह कहते हैं—

घत्ता छन्द [मात्रिक]

यह आतम स्वदेवं, शक्ति अचिन्त्यं, चित्स्वरूप चिंतामणि है।
जब सभी अर्थ की, सिद्धि स्वयं ही, अन्य परिग्रह बुध न गहे॥१४४

ज्ञानी समस्त परिग्रह का त्याग करता है यह बताते हैं—

घत्ता छंद [मात्रिक]

इत्थं सामान्यं, परिग्रह मूलं, तजकर नहीं विवेक लहा।
अज्ञान दशा तज, बुध विशेषकर परिग्रह को सब त्याग रहा॥१४५

ज्ञानी के राग के अभाव में उपभोग भी परिग्रहपने को प्राप्त नहीं होता—

घत्ता छन्द (मात्रिक)

जो पूर्वबद्ध के कर्म उदय से बुद्ध वस्तु उपभोग करे।
फिर भी विराग से, भोगपने से, नहीं परिग्रह भाव धरे ॥१४६॥

ज्ञानी पुरुष भोग की प्राप्ति की इच्छा नहीं करता—

घत्ता छंद (मात्रिक)

यह वेद्य सुवेदक, जो विभाव चल, इच्छुक वेदन नहीं गहे।
इसलिए बुद्ध जन, वांछा नहिं कर, पूर्ण रूप वैराग्य लहे ॥१४७

अथ ज्ञानिनोऽपरिग्रहित्वं चेतति—

स्वागतावृत्तम्

ज्ञानिनो न हि परिग्रहभावं, कर्मरागरसरिक्ततयैति ।
रंगयुक्तिरकषायितवस्त्रे, स्वीकृतैव हि बहिर्लुठतीव ॥१४८॥

अथ ज्ञानिनः कर्म न लिम्पति—

स्वागतावृत्तम्

ज्ञानवान् स्वरसतोऽपि यतः स्यात्
सर्वरागरसवर्जनशीलः ।
लिप्यते सकलकर्मभिरेष—
कर्ममध्यपतितोऽपि ततो न ॥१४९॥

अथ वस्तुस्वभावं निर्णेनेवित—

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

यादृक् तादृगिहास्ति तस्य वशतो यस्य स्वभावो हि यः
कर्तुं नैष कथञ्चनापि हि परैरन्यादृशः शक्यते ।
अज्ञानं न कदाचनापि हि भवेज्ज्ञानं भवत् सन्ततम्
ज्ञानिन् ! भुङ्क्ष्व परापराधजनितो नास्तीह बन्धस्तव ॥१५०॥

अथ ज्ञानिनः कर्म क्रियां प्रतिरुणद्धि—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

ज्ञानिन् ! कर्म न जातु कर्तुमुचितं किञ्चित्तथाप्युच्यते
भुंक्षे हन्त न जातु मे यदि परं दुर्भुक्त एवासि भोः ।
बन्धः स्यादुपभोगतो यदि न तत् किं कामचारोऽस्ति ते
ज्ञानं सन् बस बन्धमेष्यपरथा स्वस्यापराधाद् ध्रुवम् ॥१५१॥

ज्ञानी के अपरिग्रहपने का वर्णन करते हैं—

घत्ता छंद (मात्रिक)

ज्यों है कषायला, रहित जु कपड़ा, पर नहिं रंग प्रवेश करे।
त्यों राग रहित ही, ज्ञानी जन की, क्रिया न परिग्रह भाव धरे।१४८

ज्ञानी कर्म से लिप्त नहीं होता यह कहते हैं—

घत्ता छन्द (मात्रिक)

है आत्मरसिक जब, राग रहित सब, ज्ञानी सहज स्वभाव लहे।
इसलिये कर्म के मध्य पड़ा ये, फिर भी लिप्त न कर्मों से ॥१४९

जिसका जो स्वभाव है वह वैसा ही रहता है—यह कहते हैं—

सवैया इकतीसा (वर्णिक)

वस्तु का स्वभाव जैसा, सदा निज रहे वैसा,
किसी रूप दूसरों से अन्यथा न लहे है।
इसीलिये ज्ञान जभी होत न अज्ञान कभी,
ऐसा गुरुदेव उपदेश नित कहे हैं॥
सुन लो हे ज्ञानी जीव, पूर्व कृत कर्म नीव
प्राप्त उपभोग उदासीन रूप गहे है।
सदा पूर्ण ज्ञान गम्य, पर अपराध जन्य,
बन्ध तुझे कभी नहीं, होत गुरु कहे हैं ॥१५०॥

अब ज्ञानी को कर्मक्रिया रोकने का उपदेश देते हैं—

सवैया इकतीसा (वर्णिक)

यद्यपि हे ज्ञानी संत तुझे कभी कर्मबन्ध,
करना न योग्य तेरे, तो भी कुछ कहे हैं।
आकिंचन कहे सदा, फिर भी उपभोग लदा,
खेद तेरा मूढ़पना खोटा भोग गहे हैं॥
यदि कहे भोग से भी ज्ञानी के न बन्ध कभी।
फिर तो आचार्य तुझे भोगेच्छुक कहे हैं॥
अतः सुनो भव्य जीव ज्ञान में ही डाल नींव,
अन्यथा अपराध से ध्रुव बन्ध लहे हैं ॥१५१॥

अथ कर्मयोजनं वियोजयति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

कर्त्तारं स्वफलेन यत्किल बलात् कर्मैव नो योजयेत्
कुर्वाणः फललिप्सुरेव हि फलं प्राप्नोति यत्कर्मणः।
ज्ञानं संस्तदपास्तरागरचनो नो बद्ध्यते कर्मणा
कुर्वाणोऽपि हि कर्म तत्फलपरित्यागैकशीलो मुनिः ।।१५२।।

अथ ज्ञानी न कर्म कुरुते—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

त्यक्तं येन फलं स कर्म कुरुते नेति प्रतीमो वयं
किन्त्वस्यापि कुतोऽपि किञ्चिदपि तत्कर्मावशेनापतेत् ।
तस्मिन्नापतिते त्वकम्पपरमज्ञानस्वभावे स्थितो
ज्ञानी किं कुरुतेऽथ किं न कुरुते कर्मेति जानाति कः ।।१५३।।

अथ सम्यग्दृष्टेः साहसं कलयति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

सम्यग्दृष्टय एव साहसमिदं कर्त्तुं क्षमन्ते परं
यद्वज्रेऽपि पतत्यमी भयचलत्त्रैलोक्यमुक्ताध्वनि ।
सर्वामेव निसर्गनिर्भयतया शङ्कां विहाय स्वयं
जानन्तः स्वमवध्यबोधवपुषं बोधाच्च्यवन्ते न हि ।।१५४।।

रागी मनुष्य ही कर्मबन्ध को प्राप्त होता है—

सवैया इकतीसा (वर्णिक)

चूँकि कर्म कर्त्ता को भी बलात् वह उसे जभी,
स्व फल से युक्त कभी भूल के न करे है।
किन्तु फल इच्छुक जो कर्म करे भिक्षुक सो,
वही कर्म फल को ही एकता ही धरे है।
इसलिए ज्ञान रूप हुआ है विराग रूप,
तथा कर्म फल दूर से ही त्याग करे है।
ऐसा मुनि शुद्ध तभी आत्मा में लीन जभी
कर्मकृत फिर भी न कर्म बद्ध करे है॥१५२॥

ज्ञानी पुरुष कर्म नहीं करता है—यह कहते हैं—

सवैया इकतीसा (वर्णिक)

जिसे कर्म फल नहीं वही कर्म करे सही,
ऐसी तो प्रतीति हम कर नहीं सकते।
किन्तु इस ज्ञानी को भी किसी कार्य वश से भी,
परतन्त्र रूप से ही कर्म आ चिपकते,
कर्म के आने पर भी निश्चय कर ज्ञानी भी
अचल परम ज्ञान भाव में ठहरते।
ज्ञानी जीव क्रिया करें अथवा कुछ ना करें
हम नहिं जाने वह खुद ही समझते॥१५३॥

सम्यग्दृष्टि निर्भय होते हैं—कहते हैं—

सवैया इकतीसा (वर्णिक)

सम्यग्दृष्टि जीव खरे परम साहस धरे,
जिससे भय कंपित त्रिलोक मार्ग तजे है।
ऐसा वज्रपात पड़े सहज स्वभाव धरे—
निःशंकित गुण युक्त भय सभी तजे है।
स्वयं रहे आप मग्न निस्पृह से रहे नग्न
निज के ही द्वारा निज रूप को ही भजे है।
स्वयं ही अवध्य रहे ज्ञान रूप तन लहे
ऐसे ज्ञानवान होके ज्ञान से ही सजे है॥१५४॥

अथ भयसप्तकनिवारणार्थं ज्ञानिनः इहपरलोकभयमुत्त्रस्यति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

लोकः शाश्वत एक एष सकलं व्यक्तो विविक्तात्मन-
श्चिल्लोकं स्वयमेव केवलमयं यल्लोकयत्येककः ।
लोकोऽयं न तथापरस्तदपरस्तस्याति तद्भीः कुतो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥१५५॥

अथ वेदनाभयं वध्नाति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

एषैकैव हि वेदना तदचलं ज्ञानं स्वयं वेद्यते
निर्भेदोदितवेद्यवेदकबलादेकं सदानाकुलैः।
नैवान्यागतवेदनैव हि भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥१५६॥

अथ त्राणभयं निरस्यति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

यत् सन्नाशमुपैति तन्न नियतं व्यक्तेति वस्तुस्थितिः
ज्ञानं सत्स्वयमेव तत्किल ततस्त्रातं किमस्यापरैः ।
अस्यात्राणमतो न किञ्चन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥१५७॥

सप्तभय के निवारणार्थ ज्ञानी के इस लोक और परलोक भय का निवारण करते हैं—

सवैया-इकतीसा (वर्णिक)

पर से भिन्न आत्मा का यही चित् लोक उसका,
शाश्वत सकल व्यक्त एक रूप धरे है।
यही सम्यग्ज्ञानी एक शुद्ध जो चैतन्य लोक,
स्वयं सदा एकला ही स्वालोकन करे है।
एक ही चैतन्य लोक अन्य नहीं तेरा लोक,
फिर दोनों लोक का सू भय क्यों करे है।
यों ज्ञानी चिते नित निःशंकित रूप चित,
स्वाभाविक ज्ञान स्वयं हृदय में धरे है ॥१५५॥

ज्ञानी के वेदना-भय नहीं होता—यह कहते हैं—

सवैया-इकतीसा (वर्णिक)

सम्यग्ज्ञानी जीव के ही एक वेदना है यही,
सदा निराकुलमय अभेद से उदित है।
ऐसे वेद्य-वेदक के भाव पूर्वक बल से,
अचल विज्ञान स्वयं वेदन करत है।
अन्य रूप अर्थ की ही वेदना न कभी कही,
फिर उसे वेदना का भय क्यों रहत है।
ऐसा ज्ञानी शुद्ध रहे निःशंक स्वरूप लहे,
सहज विज्ञान रूप प्राप्त जो करत है ॥१५६॥

ज्ञानी के अरक्षा भय भी नहीं है-यह कहते हैं—

जो भी सत् स्वरूप रहे नाशवान नहिं कहे,
ऐसी वस्तु स्थिति यह निश्चय से व्यक्त है।
ज्ञान सत्स्वरूप लहे स्वयं सुरक्षित रहे,
दूसरे पदार्थ नहिं रक्षा में समर्थ हैं॥
क्योंकि ये अरक्षा जभी होत ना किसी से कभी,
अतः अरक्षा भय क्यों ज्ञानी करे व्यर्थ है।
वही बुद्धिमान कहे, निःशंक स्वरूप लहे,
सहज स्वरूप सदा ज्ञान में जो मस्त है ॥१५७॥

अथास्यागुप्तिभयं गोपयति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

स्वं रूपं किल वस्तुनोऽस्ति परमा गुप्तिः स्वरूपे न यत्
शक्तः कोऽपि परः प्रवेष्टुमकृतं ज्ञानं स्वरूपं च नुः ।
अस्यागुप्तिरतो न काचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥१५८॥

अथ ज्ञानिनो मरणभयं हरति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरणं प्राणाः किलास्यात्मनो
ज्ञानं तत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित् ।
तस्यातो मरणं न किंचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥१५९॥

अथाकस्मिकभयं कुन्थति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

एक ज्ञानमनाद्यनन्तमचलं सिद्धं किलैतत्स्वतो
यावत्तावदिदं सदैव हि भवेन्नात्र द्वितीयोदयः ।
तन्नाकस्मिकमत्र किञ्चन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दत्ति ॥१६०॥

अथ सम्यग्दृष्टेर्निजराप्रकारं प्रणीते—

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

टंकोत्कीर्णस्वरसनिचितज्ञानसर्वस्वभाजः
सम्यग्दृष्टेर्यदिह सकलं घ्नन्ति लक्ष्माणि कर्म ।
तत्तस्यास्मिन् पुनरपि मनाक्कर्मणो नास्ति बन्धः
पूर्वोपात्तं तदनुभवतो निश्चितं निर्जरैव ॥१६१॥

ज्ञानी के अगुप्तिभय नहीं होता—यह कहते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

जो वस्तु रूप है परम गुप्ति जिसमें नहिं कोई प्रवेश करे ।
निज आतम अकृत्रिम ज्ञानरूप, इसलिये न कोई अगुप्ति धरे ।।
फिर ज्ञानी सज्जन को अगुप्ति का, भय कैसे हो सकता है ।
वह नित्य निशंकित रूप स्वयं, निज सहज ज्ञान में रमता है ।।

ज्ञानी के मरणभय नहीं होता—यह कहते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

जब प्राणों का विच्छेद हुआ, उसको ही मरण जु कहते हैं ।
उस ही प्रकार इस आत्मा के, यह ज्ञान-प्राण निश्चय से है ।।
यह ज्ञान स्वयं शाश्वत अक्षय, इसलिये मरण नहिं ज्ञानी के ।
फिर उसे मरणभय क्यों वह नित निश्शंक स्वभाविक ज्ञान लहे ।।

ज्ञानी के आकस्मिक भय नहीं होता—यह कहते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

जो आतम ज्ञान अनादि नंत, अरु अचल स्वयं ही सिद्ध रहे ।
वह सदा शुद्ध रहता उसमें फिर अन्य उदय नहिं कभी कहे ।।
इसलिये ज्ञान में कुछ भय नहिं, आकस्मिक भय क्यों ज्ञानी के ।
वह नित्य निरञ्जन स्वयं सहज ही, ज्ञान प्राप्त है, ध्यानी के ।१६०

सम्यग्दृष्टि के निर्जरा का वर्णन करते हैं—

मुक्तक छन्द (मात्रिक)

टंकोत्कीर्ण स्वाभाविक नित्य, विज्ञान रूप सर्वस्व धरे ।
उस सम्यग्दृष्टि के सब गुण, कर्मों को जग में नाश करें ।।
इसलिये ज्ञान सर्वस्व प्रकट नहिं किञ्चित् बन्धन उसके है ।
वह चूँकि पूर्वकृत कर्मों की, अनुभूति नियत निर्जरा लहे ।१६१।

अथ सम्यग्दृष्टेरङ्गानि लक्षयति—

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

रुन्धन् बन्धं नवमिति निजैः संगतोऽष्टाभिरङ्गैः
प्राग्बद्धं तु क्षयमुपनयन् निर्ज्जरोज्जृम्भणेन ।
सम्यग्दृष्टिः स्वयमतिरसादादिमध्यान्तमुक्तं
ज्ञानं भूत्वा नटति गगनाभोगरङ्गं विगाह्य ।।१६२।।

इति निर्जराधिकारः समाप्तः

सम्यग्दृष्टि अष्ट अंग सहित होकर पूर्ववद्ध कर्मों की निर्जरा करता है—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

जो इस प्रकार निज आठ अंग से युत नवीन वन्धन रोका।
निर्जरा वृद्धि से पूर्ववद्ध सव कर्मों को निश्चित धोता॥
वह सम्यग्दृष्टि आदि मध्य अरु अन्त रहित निज रूप धरे।
ज्ञानमयी नभ मंडल की रङ्गभूमि में घुसकर नृत्य करे॥१६२।

निर्जराधिकार सार

रागादि आस्रव का निरोध करके यह संवर आगे आने वाले कर्मों को दूर से ही रोककर स्थित हो जाता है। उस समय पूर्व के वंधे हुए कर्मों को जलाने के लिए निर्जरा आ जाती है। जिससे ज्ञानज्योति पुनः रागादि भावों से आवृत्त नहीं होती है। यह ज्ञान और वैराग्य की ही सामर्थ्य है कि जो उदयागत कर्मों का फल भोगते हुए भी सम्यग्दृष्टि आगे कर्मों से नहीं वँधता है। इसी वात को काव्य १३६वें में कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि के ही ज्ञान और वैराग्य की शक्ति प्रगट होती है जिसके वल से वह पर राग द्वेषादि से सर्वथा परे होकर अपनी आत्मा में ही स्थित हो जाता है यहाँ यह अभिप्राय नहीं लेना चाहिये कि सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में पंच इंद्रियों के विषयों का अनुभव करते हुए भी कर्मवंध नहीं करता है मात्र निर्जरा ही करता है क्योंकि उसके तो कर्मों का वंध अनिवार्य ही है सो ही आगे १३७वें कलश में देखिये—"मैं सम्यग्दृष्टि हूँ मेरे कदाचित् भी कर्म का वंध नहीं है ऐसा गर्व करते हुए रागी पुरुष भले ही समितियों का पालन करते रहें किन्तु वे पापी ही हैं चूँकि उन्हें आत्मा और अनात्मा का भेद विज्ञान नहीं हुआ है अर्थात् उन्होंने रागादि से अपने उपयोग को हटाकर शुद्धोपयोग में परिणति नहीं की है अतः वे सम्यक्त्व से भी शून्य हैं। "इस काव्य से यह स्पष्ट है कि यहाँ पर समयसार में निर्जरा का अधिकारी शुद्धोपयोगी मुनि ही है। आगे सरागी मुनियों को वीतरागी वनने की प्रेरणा देते हुए १३८, १३९वें काव्य में पर से हटकर मात्र चैतन्य स्वरूप आत्मा के ही अनुभव करने को स्वपद कहा है।

आगे १४५वें काव्य में कहते हैं कि मुनि पहले ही समस्त परिग्रह को छोड़कर निष्परिग्रही हो चुके हैं फिर भी स्व-पर में विवेक का हेतु जो अज्ञान है अव विशेष रूप से उसको छोड़ना है और भेद विज्ञान को प्राप्त

करना है। जब भेदविज्ञान प्रगट हो जाता है तभी यह साधु पूर्ण निष्परि-ग्रही होता है। उसी के प्राग्बद्ध कर्मों की निर्जरा होती है। कलश काव्य १५२वें में कहते हैं कि जो मुनि राग से छूटकर ज्ञानरूप परिणत होता है वही कर्म से नहीं बँधता है क्योंकि वह कर्म के फल के त्याग रूप हीं एक स्वभाव वाला है वह कर्म करते हुए भी कर्मों से नहीं बंधता है। इसी बात को अगले १५वें काव्य में स्पष्ट करते हैं—कि ज्ञानी आत्मा ने कर्म के फल को छोड़ दिया है वह कुछ भी कर्म नहीं करता है यदि कदाचित् उसके भी कोई तीव्र कर्म का उदय आ जाता है अर्थात् उपसर्ग परीषह आदि के निमित्त से आ जाता है तो भी वह ज्ञानी मुनि अपने उपयोग में स्थिर अकंप रहता है। उसी ज्ञानी के लिये कहा जाता है कि यह मुनि निर्विकल्प परसमाधि में स्थित है यह कुछ भी कर्म नहीं करता है पुन-रपि इसी निर्जरा प्रकरण में आठों अंगों का वर्णन किया है जो कि निश्चयनय की अपेक्षा से महामुनि में ही घटित होते हैं मूल गाथा में देखिये—

जो चत्तारिवि पाए छिंददि ते कम्मबंधमोहकरे।
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ २२९

जो आत्मा कर्म बंध के कारण मोह के करने वाले मिथ्यात्व, अवि-रति, कषाय और योग इन चारों पादों को निःशंक हुआ काट डालता है वह आत्मा निःशंक सम्यग्दृष्टि है। यह लक्षण कहाँ घटेगा सो विद्वान् स्वयं समझ सकते हैं।

अमृतचन्द्र सूरि तो यहाँ तक कहते हैं कि "सम्यग्दृष्टि ही ऐसा साहस करने में समर्थ हैं कि जो भय से तीनों लोकों को चलायमान कर देने वाले ऐसे वज्र के गिरने पर भी अपने ज्ञान से चलायमान नहीं होते हैं। इसी प्रसंग में कलश कर्ता ने कहा है कि जो सात भयों से रहित अपनी शुद्ध आत्मा को टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वभाव मात्र अनुभव करते हैं उनके किंचित् भी कर्म का बन्ध नहीं होता है। प्रत्युत् पूर्व में बंधे हुए कर्मों की निर्जरा ही हो जाती है। इस प्रकार से इस अधिकार में १३३ से लेकर १६२ तक कलश काव्य हैं।

बन्धाधिकार

• •

अथ बन्धाधिकारः

ननु संवरनिर्जरे निरन्तरं ज्ञानिनो निरूपिते पुनः कस्य तु ते द्वे ? प्रतिषेधस्य विधिपूर्वकत्वादिति विचिन्त्य बन्धतत्त्वं निबध्यते—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

रागोद्गारमहारसेन सकलं कृत्वा प्रमत्तं जगत्
क्रीडन्तं रसभावनिर्भरमहानाट्येन बन्धं धुनत्
आनन्दामृतनित्यभोजि सहजावस्थां स्फुटन्नाटयत्
धीरोदारमनाकुलं निरुपधि ज्ञानं समुन्मज्जति ॥१६३॥

अथ कथमुच्यते जगतः कर्मात्मकत्वादिति वदन्तं प्रत्याचष्टे—

पृथ्वीवृत्तम्

न कर्मबहुलं जगत् न चलनात्मकं कर्म वा
न नैककरणानि वा न चिदचिद्वधो बन्धकृत् ।
यदैक्यमुपयोगभूः समुपपाति रागादिभिः
स एव किल केवलं भवति बन्धहेतुर्नृणाम् ॥१६४॥

अथ कर्मबहुलादीनां कर्महेतुत्वं मीमांसते—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

लोकः कर्म ततोऽस्तु सोऽस्तु च परिस्पंदात्मक कर्म तत्
तान्यस्मिन् करणानि सन्तु चिदचिद्व्यापादनं चास्तु तत् ।
रागादीनुपयोगभूमिमनयन् ज्ञानं भवन् केवलं
बन्धं नैव कुतोऽप्युपैत्ययमहो सम्यग्दृगात्मा ध्रुवम् ॥१६५

अथ तथापि ज्ञानिनां निरर्गलत्वं विद्वेषयति—

पृथ्वीवृत्तम्

तथापि न निरर्गलं चरितुमिष्यते ज्ञानिनां
तदायतनमेव सा किल निरर्गला व्यापृतिः ।
अकामकृतकर्म तन्मतमकारणं ज्ञानिनां
द्वयं न हि विरुध्यते किमु करोति जानाति च ॥१६६॥

बन्ध-अधिकार

अब बन्ध तत्त्व का वर्णन करते हैं—

शिखरिणी छन्द (वर्णिक)

सरागो उद्‌गारो प्रचुर रस से सर्व जनता ।
मदं प्राप्तं क्रीडन् प्रचुर नट से बन्ध नशता ।।
सदानन्दी मौजी सहज निरुपाधिः अचल है ।
वही ज्ञान ज्योतिः सरस समता से प्रकट है ।।१६३।।

अब बन्ध के कारणों को कहते हैं—

शिखरिणी छन्द (वर्णिक)

नही बन्धं हेतू करम बहुलं व्याप्त जगती ।
न बन्धं योगं वा प्रचुर बहु भेदं करण ही ।।
सचित्ताचित् हिंसा नहिं वह कभी बन्ध धरता ।
सदा रागद्वेषी सह परिणमो बन्ध करता ।।१६४।।

अन्य अनेक कारण रहने पर भी रागादि के विना बंध नहीं होता यह कहते हैं—

शिखरिणी छन्द (वर्णिक)

सकर्मं लोकं वा सतत रह योगं करण भी ।
सचित्ताचित् घातं भवति सब तो भी विरत है ।।
सदा रागादीनां रहित उपयोगं धर जभी ।
वही ज्ञानी ज्ञानं निरत ध्रुव बंधन तज सभी ।।१६५।।

ज्ञानी को स्वच्छन्द प्रवृत्ति का निषेध करते हैं—

शिखरिणी छन्द

न ज्ञानी के बंधन तदपि यदि स्वच्छन्द प्रवृती ।
नहीं इष्टं मान्यं प्रवृति वह ही बँध करती ।।
अवांछा रूपं ही करम कर ज्ञानी नहिं बँधे ।
वही कर्ता ज्ञाता नियत द्वि विरुद्धं नहिं सधे ।।१६६।।

अथ कर्तृज्ञात्रोः पृथक्त्वं विवीयते—

वसंततिलकावृत्तम्

जानाति यः स न करोति, करोति यस्तु
जानात्ययं न खलु तत् किल कर्मरागः ।
रागं त्वबोधमयमध्यवसायमाहुः
मिथ्यादृशः स नियतं स हि (च) बन्धहेतुः ॥१६७॥

अथाहं मरणादीनां कारक इत्यभिप्रेतस्य मिथ्यादृष्टित्वं दरीदृश्यते पद्यद्वयेन—

वसंततिलका-वृत्तम्

सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय-
कर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम् ।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य
कुर्यात् पुमान् मरणजीवितदुःखसौख्यम् ॥१६८॥

वसंततिलका-वृत्तम्

अज्ञानमेतदधिगम्य परात् परस्य
पश्यन्ति ये मरण-जीवित-दुःख-सौख्यम् ।
कर्माण्यहंकृतिरसेन चिकीर्षवस्ते
मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवन्ति ॥१६९॥

अथाध्यवसायस्य बन्धहेतुत्वं पाप्ठ्यते—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

मिथ्यादृष्टेः स एवास्य बंधहेतुर्विपर्ययात् ।
य एवाध्यवसायोऽयमज्ञानात्माऽस्य दृश्यते ॥१७०॥

अथाध्यवसायमाहात्म्यमारभ्यते—

अनुष्टुप् वृत्तम्

अनेनाध्यवसायेन निष्फलेन विमोहितः ।
तत्किञ्चनापि नैवास्ति नात्मात्मानं करोति तत् ॥१७१॥

कर्तृत्व और ज्ञातृत्व का परस्पर विरोध दिखलाते हैं—

शिखरिणी छंद (वर्णिक)

सुधी यावत् ज्ञाता सतत वह तावत् न करता ।
सकर्त्ता जो कर्म वह नियत ही राग धरता ॥
सरागो अज्ञानो प्रवृति परिणामो नियत है ।
वही अज्ञानी के परिणमन वन्धन निमित है ॥१६७॥

मैं दूसरों को मारता हूँ—यह भाव मिथ्याभाव है—

शिखरिणी छन्द (वर्णिक)

सदा ही प्राणी के मरण दुख इत्यादिक कहे ।
त्रिकालं त्रैलोक्यं स्वकृत निज कर्मोदय लहे ॥
तथा जो भी माने पर पुरुष ही सर्व करता ।
वही है अज्ञानी प्रवृति नित अज्ञान धरता ॥१६८॥

एक दूसरे को मारते हैं वा दुःख देते हैं—ऐसा मानने वाले मिथ्या-दृष्टि हैं—

शिखरिणी छन्द (वर्णिक)

वही मिथ्या भावं सहित नर जो सर्व पर से ।
सदा ही प्राणी का मरण सुख दुःखादि दिखते ॥
अहंकारं युक्तं करम कृत का इच्छुक वही ।
वही मिथ्यादृष्टि परम गुणघाती नियत ही ॥१६९॥

मिथ्याभाव ही बंध का कारण है—यह कहते हैं—

इन्द्रवज्रा छंद (वर्णिक)

मिथ्यात्व युक्तं जिय के दिखे जो,
अज्ञान रूपं परिणाम भावो ।
सो ही स्वरूपं विपरीत वृत्ती
नित्यं कहे वो सव बंध हेतू ॥१७०॥

अव निष्फल अध्यवसाय का फल वताते हैं—

इन्द्रवज्रा छंद (वर्णिक)

अध्यावसानं परभाव द्वारा व्यामोहितं जीव परात्मरूपं ।
ऐसी नहीं किंचितं वस्तु भू में आतम स्वरूपं करता न मोही ॥१७१

अथ तथाप्यध्यवसायं बीभत्सते—

इन्द्रवज्रा-वृत्तम्

विश्वाद् विभक्तोऽपि हि यत्प्रभावात्
आत्मानमात्मा विदधाति विश्वम् ।
मोहैककन्दोऽध्यवसाय एषः
नास्तीह येषां यतयस्त एव ॥१७२॥

अथाध्यवसायस्य व्यावहारिकत्वं व्यवहरति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनैः
तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः ।
सम्यङ्निश्चयमेकमेव तदमी निष्कम्पमाक्रम्य किम्
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो धृतिम् ॥१७३॥

अथ रागादीनां किं कारणमिति साक्षेपं प्रश्नोत्तरं पद्यद्वयेन निर्मिमीते—

उपजाति-वृत्तम्

रागादयो बन्धनिदानमुक्तास्-
ते शुद्धचिन्मात्रमहोऽतिरिक्ताः ।
आत्मा परो वा किमु तन्निमित्त-
मिति प्रणुन्नाः पुनरेवमाहुः ॥१७४॥

उपजाति-वृत्तम्

न जातु रागादिनिमित्तभाव-
मात्मात्मनो याति यथार्ककान्तः ।
तस्मिन्निमित्तं परसंग एव-
वस्तु स्वभावोऽयमुदेति तावत् ॥१७५॥

अथ ज्ञानिनस्तदकर्तृकत्वमुद्भावति—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

इति वस्तुस्वभावं स्वं ज्ञानी जानाति तेन सः ।
रागादीन्नात्मनः कुर्यात् नातो भवति कारकः ॥१७६॥

इस अध्यवसाय भाव की निंदा करते हैं—

इन्द्रवज्रा छंद (वर्णिक)

संसार भिन्नं फिर भी विमूढं,
आत्म स्वभावं जग रूप करता ।
मोहं सदा ही इक मूल जिसका,
ऐसे न भावो वह ही मुनी है ।।१७२।।

सब प्रकार का अध्यवसाय भाव त्यागने योग्य है यह कहते हैं—

मन्दाक्रान्ता छंद (वर्णिक)

सर्वत्रं जो सब परिणमो त्याग योग्यं जिनोक्तं ।
अन्ये सर्वं पर सहकरी सर्व व्योहार हेयं ।।
भव्यो जीवः अचलपन से एक शुद्धं उपेयं ।
आत्म ज्ञानं परम महिमा में विलीनं नहीं किम् ।।१७३।।

रागादिक का निमित्त क्या है इस प्रश्न को लेकर प्रश्नोत्तर कहते हैं—

उपेन्द्रवज्रा छन्द (वर्णिक)

प्रसिद्ध रागादिक बंध हेतू—
विशुद्ध चिन्मात्र स्वरूप भिन्नं ।
उन्हीं विभावादि निमित्त क्या है—
सुशिष्य प्रश्नोत्तर सूरि भाख्यं ।।१७४।।

रागादि की उत्पत्ति परसंग से होती है—यह कहते हैं—

उपेन्द्रवज्रा छन्द (वर्णिक)

सदा रवीकान्तमणी समानं-
नहीं स्वयं आत्म निमित्त रूपं ।
निमित्त भूतं पर संग ही है-
स्वभाव भूतं सब द्रव्य शोहै ।।१७५।।

ज्ञानी रागादिक का कर्त्ता नहीं है—यह कहते हैं—

उपेन्द्रवज्रा छन्द (वर्णिक)

प्रबुद्ध ज्यों वस्तु स्वभाव ज्ञाता,
इसीलये त्याग विभाव नाता ।
स्वभाव रूपी रमता सुधी है,
विभाव का वो कर्ता नहीं है ।।१७६।।

अथाज्ञानं स्फूर्जति—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

इति वस्तुस्वभावं स्वं नाज्ञानी वेत्ति तेन सः ।
रागादीनात्मनः कुर्यात् अतो भवति कारकः ॥१७७॥

अथ परद्रव्यमुद्धर्तुकामं समभिष्टौति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

इत्यालोच्य विवेच्य तत्किल परद्रव्यं समग्रं बलात्
तन्मूलां बहुभावसन्ततिमिमामुद्धर्तुकामः समम् ।
आत्मानं समुपैति निर्भरवहत् पूर्णैकसंविद्युतं
येनोन्मूलितबन्ध एष भगवानात्मात्मनि स्फूर्जति ॥१७८॥

अथ रागादीनां दारकत्वं दिशति—

मन्दाक्रान्ता-वृत्तम्

रागादीनामुदयमदयं दारयत्कारणानां
कार्यं बन्धं विविधमधुना सद्य एव प्रणुद्य ।
ज्ञानज्योतिःक्षपिततिमिरं साधु सन्नद्धमेतत्
तद्वत् यद्वत् प्रसरमपरः कोऽपि नास्यावृणोति ॥१७९

इति बन्धाधिकारः समाप्तः

अज्ञानी स्वभाव के अज्ञान के कारण रागादिक का कर्ता है—

उपेन्द्रवज्रा छन्द (वर्णिक)

अबुद्ध ना वस्तु स्वभाव ज्ञाता,
विभाव को आत्मिक रूप कर्ता।
जभी विकारादिक रूप होता,
इसीलिए कर्तृक बुद्धिधर्ता ॥१७७॥

अब पर द्रव्य और अध्यवसान भाव के त्याग का उपदेश देते हैं—

मुक्तक छन्द (मात्रिक)

ऐसा विचार कर अन्य द्रव्य,
मूलक वह भाव सुसंतति को।
इक संगहि उन्मूलन इच्छुक,
जब भिन्न किया पर द्रव्यों को,
तब अतिधारावाहि पूर्ण इक,
संवेदन युत आत्म लहे।
जो कर्म बंध उन्मूलनकर,
वह देव आत्म में शोभ रहे ॥१७८॥

आत्मा ज्ञान से रागादिक का नाश करता है—यह कहते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

जो बंध हेतु रागादि उन्हीं के,
उदय कषाय सयुक्त भिदे।
जो मिथ्यातम को नाश करे,
ऐसी यह ज्ञान ज्योति दिपे।
रागादि कार्य वह बंध उसे,
तत्क्षण विनाश कर सज्जित है।
ज्यों भूषित वह नहि अन्य कोइ
भी इस प्रकार को रोक सके ॥१७९॥

बन्ध अधिकार समाप्त

बंध अधिकार सार

इस बंध प्रकरण में आचार्यश्री ने बंध के मूल कारण को बताया है कि कार्मणवर्गणाओं से भरा हुआ लोक, आत्मा के प्रदेशों का परिस्पंदन और नाना क्रियायें मुख्य रूप से कर्मबंध में हेतु नहीं हैं प्रत्युत आत्मा के रागादि परिणाम ही बंध के हेतु हैं। मूलग्रन्थ में श्री कुंदकुंददेव ने तो बहुत ही सुन्दर उदाहरण दिया है कि जिस प्रकार से कोई पुरुष तेल लगा करके धूलि के स्थान में व्यायाम करता है तो उसकी व्यायाम क्रियाओं से उसके शरीर में धूलि चिपकी हो ऐसी बात नहीं है परन्तु उसके शरीर में जो तेल की चिकनाई है उससे धूलि चिपकी है। वही कर्मबंध में हेतु है। यदि आत्मा के उपयोग में रागादिभाव नहीं हो रहे हैं, निर्विकल्प समाधिरूप ध्यान में तन्मयता है तो उस समय उस आत्मा के साथ कर्मों का बंध नहीं होगा। हाँ, यदि अबुद्धिपूर्वक भी राग का सद्भाव है तो भी कर्मबंध हो रहा है भले ही श्रेणी में स्थित मुनि के वह अल्प-स्थिति-अनुभाग वाला ही है फिर भी सर्वथा बंध का अभाव नहीं कहा जा सकता है। और निश्चयनय से जीव में रागादि नहीं है तो निश्चय-नय से बंध और संसार भी नहीं है। आगे चलकर कलश काव्य १६६ में कहते हैं कि "फिर भी ज्ञानियों को स्वच्छन्द प्रवृत्ति करना उचित नहीं है क्योंकि यह स्वच्छन्द प्रवृत्ति ही बंध का स्थान है। ज्ञानियों की इच्छा रहित क्रियायें बंध के लिए कारण नहीं हैं।" यहाँ पर सर्वथा इच्छा रहित प्रवृत्ति अर्हन्त भगवान् की ही होती है। उनका श्रीविहार उपदेश आदि बिना इच्छा के ही होता है इसीलिये उनके तो सर्वथा ही कर्मबंध का भी अभाव है। हाँ, यहाँ महामुनियों के लिए कथन है इसलिए वे मनःपूर्वक कोई क्रिया न करते हुए भी मात्र वचन और काय से करते हैं मन के उपयोग को बाह्य क्रियाओं से खींच कर शीघ्र ही अपनी ओर ले आते हैं। वे साधु अपनी आवश्यक क्रियाओं में भी सावधान रहते हैं और आत्मा के ध्यान चिंतन मनन में भी जागरूक रहते हैं। उनके बुद्धिपूर्वक रागद्वेषादि प्रवृत्ति का अभाव होने से बंध भी बहुत ही हल्का होता है वह सातिशय पुण्य प्रकृति तीर्थंकर आहारक आदि का होता है जो कि मोक्षमार्ग में बाधक न होकर साधक बन जाता है।

यहाँ पर कर्तृत्व भाव से भी जीव को हटाते हुए प्रेरणा दी है-यदि कोई यही मान बैठे कि 'पर के जीवन मरण सुख-दुःख आदि को मैं ही करता हूँ और मेरे सुख-दुःख जीवन मरण आदि को पर ही करते हैं, तो

यह एकांत ठीक नहीं है क्योंकि अपने-अपने कर्मों के उदय से ही जीवों के सुख-दुःख, जीवन-मरण निश्चित हैं। पर तो निमित्त मात्र है, यहाँ पर निमित्त को ही उपादान समझ लेना मिथ्यात्व है इस कर्तृत्व बुद्धि से साधु अहंकार से भर जाता है। पुनः हर्षविषाद परिणति से परिणत होते हुए कर्मों का बंध करता ही रहता है। यह मोह ऐसा ही है इसके प्रभाव से यह आत्मा सारे विश्व को अपना कर लेता है जब कि अपने शरीर और अपने रागादि भावों से भी यह पृथक् है। 'नास्तीह येषां यत-यस्त एव।' श्री अमृतचन्द्रसूरि कहते हैं जिनके यह मोक्ष नहीं है वे ही यति हैं। खास बात यही है कि यह श्रद्धान तो चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्-दृष्टि को और देशव्रती श्रावक को भी हो जाता है किंतु ऐसी प्रवृत्ति तो सरागसंयमीमुनि से ही होती है, तरतमता बढ़ते-बढ़ते श्रेणी में स्थित महामुनि के अनुभव में स्थिरता हो जाती है तब रागद्वेष अहंकार आदि भाव प्रलय को प्राप्त हो जाते हैं तभी वह ज्ञानी संज्ञा को प्राप्त होता है उस समय यह अपने उपयोग में रागादि भावों को नहीं करता है तभी बंध का अकर्ता हो जाता है। यह सब एक भेद विज्ञान का ही माहात्म्य है कि जिससे पूर्ण एक ज्ञान से युत—केवलज्ञान से संयुत बंध को जड़मूल से उखाड़ कर फेंकने वाला यह भगवान् आत्मा अपनी आत्मा में ही स्फुरायमान हो जाता है। जैसा कि कलश १७८ में कहा है। इस प्रकार से यहाँ पर कलश १६३ से १७६ तक बंधाधिकार को लिया है।

मोक्षाधिकार

अथ मोक्षाधिकारः

अथ मोक्षतत्त्वं क्रमप्राप्तमाक्रामति—

शिखरिणी-वृत्तम्

द्विधाकृत्य प्रज्ञाक्रकचचलनाद् बन्ध-पुरुषौ
नयन्मोक्षं साक्षात्पुरुषमुपलम्भैकनियतम् ।
इदानीमुन्मुज्जत्-सहजपरसानन्दसरसं
परं पूर्णं ज्ञानं कृतसकलकृत्यं विजयते ॥१८०॥

अथ प्रज्ञाछेत्रीमभिष्टौति—

स्रग्धरा वृत्तम्

प्रज्ञाछेत्री शितेयं कथमपि निपुणैः पातिता सावधानैः ।
सूक्ष्मेन्तः सन्धिबन्धे निपतति रभसादात्मकर्मोभयस्य ॥
आत्मानं मग्नमन्तः स्थिर विशदलसद्धाम्नि चैतन्यपूरे
बन्धं चाज्ञानभावे नियमितमभितः कुर्वती भिन्न-भिन्नौ ॥१८१

अथ तयोर्भेदकं प्रलपति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

भित्त्वा सर्वमपि स्वलक्षणबलात् भेत्तुं हि यच्छक्यते
चिन्मुद्राङ्कितनिर्विभागमहिमा शुद्धश्चिदेवास्म्यहम् ।
भिद्यन्ते यदि कारकाणि यदि वा धर्मा गुणा वा यदि
भिद्यन्तां न भिदास्ति काचन विभौ भावे विशुद्धे चिति ॥१८२॥

अथ चेतनाया एकानेकरूपं विवक्षति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

अद्वैतापि हि चेतना जगति चेद् दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत्
सत्सामान्यविशेषरूपविरहात् सास्तित्वमेव त्यजेत् ।
तत्त्यागे जड़ता चितोऽपि भवति व्याप्यो विना व्यापकात्
आत्मा चान्त्यमुपैति तेन नियतं दृग्ज्ञप्तिरूपास्ति चित् ॥१८३॥

मोक्ष-अधिकार

भेद ज्ञान से पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति होती है—यह कहते हैं—

स्रग्धरा छन्द (वर्णिक)

प्रज्ञारूपी जु छैनी, सुपृथक करके कर्म जीवो विदारे।
स्वात्मोद्भूती अंकपो नित भविजन को मोक्ष साक्षात् बिठारे।।१७९
नित्यं स्वाभावियुक्तो, सरसहि प्रगटो, श्रेष्ठ आनंद रूपी।
जो कृत्कृत्यं विशुद्धं परम सुख निधी पूर्ण ज्ञानं जयन्ती ।।१८०

प्रज्ञारूपी छेनी से भेद ज्ञान होता है—

स्रग्धरा छन्द (वर्णिक)

प्रज्ञा तीक्ष्णं करोतं, चतुर भविजने शक्ति पूर्वं गिराता।
आत्मा कर्मं द्वि मध्ये हृदय पटल में वेग पूर्वं लगाता ।।
जो तन्मध्ये हि तिष्ठो अमल विकसितो, तेज युक्तं महात्म्यं।
चैतन्यं पूर मग्ने सहत निज परो बंध से भिन्न रूपं ।।१८१।।

बन्ध और अज्ञानभाव के भेदक का वर्णन करते हैं—

स्रग्धरा छन्द (वर्णिक)

भेदो कर्तुं समर्थं निज गुण बल से भिन्न चिन्मुद्र चिन्हो।
जो चैतन्यं अभेदो, गुणयुत महिमा युक्त मैं शुद्ध चेतो ।।
सर्वे धर्मा गुणो कारक सहजिक ये भेद प्राप्ति कहे जो।
तो भी भावो विशुद्धो विभु स्वचित निजो भेद किंचित नहीं वो १८२

चेतना के एक और अनेक रूपता का वर्णन करते हैं—

स्रग्धरा छंद (वर्णिक)

अद्वैतं विश्व में हो तव सतत तजे चेतना दर्श ज्ञानं।
जो सामान्यो विशेषो जब असद भयो त्यों हि सत् रूपं त्यागं।
हो अस्तित्वं अभावो, फिर सहज गुणी आत्म में हो जड़त्वं।
व्याप्यं अन्तं विना व्यापक, नियत निजो चेतना दर्शज्ञानं ।।१८३

अथ चेतनाचेतनयोः परत्वापरत्वं प्रपूर्यते—

इन्द्रवज्रावृत्तम्

एकश्चितश्चिन्मय एव भावः
भावाः परे ये किल ते परेषाम् ।
ग्राह्यस्ततः चिन्मय एव भावः
भावाः परे सर्वत एव हेयाः ॥१८४॥

अथ रहस्यसिद्धान्तं साधयितुमुपक्रामति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

सिद्धान्तोऽयमुदात्तचित्तचरितैः मोक्षार्थिभिः सेव्यतां
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः तदेवास्म्यहम् ।
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावा पृथक् लक्षणाः
तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रः अपि ॥१८५

अथ सापराधिनो बन्धं द्योतते—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

परद्रव्यग्रहं कुर्वन् बध्येतैवापराधवान् ।
बध्येतानपराधो न स्वद्रव्ये संवृतो मुनिः ॥१८६॥

अथ सापराधापराधयोर्बन्धाबन्धौ बिभर्ति—

मालिनी-वृत्तम्

अनवरतमनन्तैर्बध्यते सापराधः
स्पृशति निरपराधो बन्धनं नैव जातु ।
नियतमयमशुद्धं स्वं भजन् सापराधो
भवति निरपराधः साधु शुद्धात्मसेवी ॥१८७॥

अतो हताः प्रमादिनो गताः सुखासीनतां
प्रलीनं चापलं उन्मूलितसालम्बनम् ।
आत्मन्येवालानितं चित्तं
आसम्पूर्णविज्ञानघनोपलब्धे ॥१८८॥

चेतन और अचेतन के भिन्न और अभिन्न भावों का वर्णन करते हैं—

उपजाति छन्द (वर्णिक)

आत्मा सदा चिन्मय भाव ही है,
निजात्म भिन्नं परभाव ही है।
चैतन्य भावो हि उपेय मानो,
विकार भावो नित हेय जानो ॥१८४॥

मोक्षार्थियों को सिद्धान्त को साधने का उपदेश देते हैं—

मन्दाक्रान्ता छंद (वर्णिक)

चित्तो वृत्ती अतिशय परो मोक्ष तीर्थाभिलाषी।
जो सिद्धान्तो भविक जनको सेवने योग्य भासी॥
नित्यं शुद्धो निज गुण युतो आत्म ज्योती रहूँ मैं।
आत्मा भिन्नो सब परिणमो अन्य द्रव्य नहीं मैं ॥१८५॥

परद्रव्य को ग्रहण करने वाला अपराधी है—अपराधी को बंध होता है—यह कहते हैं—

उपजाति छन्द (वर्णिक)

जो अन्य द्रव्यं नित मोह धर्त्ता,
वही सदोषी नित बंध कर्त्ता।
जो आत्म द्रव्यं नित मग्न होवे,
निरापराधी मुनि मुनि बन्ध खोवे ॥१८६॥

सापराध के बन्ध होता है और निरपराध के अबन्ध होता है—

उपजाति छंद (वर्णिक)

जो सापराधी विधि बीज बोवे,
निरापराधी निज बन्ध खोवे।
वो ही सदोषी परभाव भावे,
वही अदोषी नित आत्म ध्यावे ॥१८७॥

मन्द्राकान्ता छंद (वर्णिक)

सुखिया साधु नष्ट होता हो प्रमादी क्रिया में।
इससे नाशो चपलता सब छोड़ आलम्ब पर में॥
यावत् आत्मा ज्ञानघनमय प्राप्त होवे न तावत्।
आत्मा में ही चित्त अपना बांध रक्खो सुसंवृत ॥१८८॥

अथ प्रतिक्रमणाप्रतिक्रमणं विवेचयति—

वसन्ततिलका-वृत्तम्

यत्र प्रतिक्रमणमेव विषं प्रणीतं
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात् ।
तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रयतन्नधोऽधः
किं नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमादः ॥१८९॥

अथ प्रमादमापाद्यते—

पृथ्वी-वृत्तम्

प्रमादकलितः कथं भवति शुद्धभावोऽलसः
कषायभरगौरवात् अलसता प्रमादो यतः ।
अतः स्वरसनिर्भरे नियमितः स्वभावे भवन्
मुनिः परमशुद्धतां व्रजति मुच्यते चाऽचिरात् ॥१९०

अथ सर्वापराधं च्योतति—

शार्दूल विक्रीडित वृत्तम्

त्यक्त्वाऽशुद्धिविधायि तत्किल परद्रव्यं समग्रं स्वयं
स्वद्रव्ये रतिमेति यः स नियतं सर्वापराधच्युतः ।
वंधध्वंसमुपेत्य नित्यमुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छल-
च्चैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा शुद्धो भवन्मुच्यते ॥१९१॥

अथ मोक्षं महते—

मन्दाक्रान्ता वृत्तम्

वन्धच्छेदात् कलयदतुलं मोक्षमक्षय्यमेतत्
नित्योद्योतस्फुटितसहजावस्थमेकान्तशुद्धम् ।
एकाकारस्वरसभरतोऽत्यन्त गम्भीर धीरं
पूर्णज्ञानं ज्वलितमचले स्वस्य लीनं महिम्नि ॥१९२॥

इति मोक्षाधिकारः समाप्तः

प्रतिक्रमण और अप्रतिक्रमण का विवेचन करते हैं—

मन्दाक्रान्ता छंद (वर्णिक)

भव्यो जीवः सप्रतिक्रमणो सो विषं ही कहा है।
सो ही मूढं अप्रतिक्रमणो अमृतं क्यों रहा है॥
तो भी सन्तो पदच्युत हुआ क्यों प्रमादी बना है।
निष्प्रमादी बन कर अहो क्यों न मोक्षं लहा है॥१८९॥

प्रमादी मनुष्य शुद्धभाव का धारक नहीं हो सकता यह कहते हैं—

पृथ्वी छन्द (वर्णिक)

प्रमाद सहितो नरो नहिं विशुद्ध भावो लहे।
कषाय भरितो सदा प्रमद ही प्रमादो कहे।
अतः स्वरस पूर्णतो निज स्वरूप तिष्ठो मुनी।
वही परम शुद्ध तो लहत शीघ्र मुक्ती मणी॥१९०॥

मुक्त कौन होता है ? यह कहते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

जो मानव निश्चय से अशुद्धकृत,
परद्रव्यों का त्याग करे।
खुद आत्म द्रव्य में रम कर ही,
निश्चित अपराध कभी न धरे।
अरु बंध नाशकर नित्य उदय को,
प्राप्तं ज्ञान ज्योति जो कहे।
उसमें विकसित निज अमृत रस,
महिमा युत शुद्ध विमुक्त रहे॥१९१॥

अब मोक्ष की महिमा कहते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

जब कर्म बन्ध के छेदन से, जो अतुल सु अक्षय मोक्ष लहे।
फिर जिसकी सहज अवस्था नित, हि प्रकाश युक्त जो प्रकट रहे।
जो परं शुद्ध नित एकाकार निज रस युत अति गम्भीर कहा।
अरु धीर अचल निज महिमा रत, यह पूर्ण ज्ञान दैदीप्य रहा॥१९२

मोक्ष-अधिकार समाप्त

मोक्ष अधिकार सार

प्रज्ञारूप करोंत के द्वारा आत्मा और बंध को अलग-अलग करके आत्मा को मोक्ष में ले जाता हुआ ज्ञान अपने-आप में परिपूर्णता को प्राप्त हुआ कृतकृत्य हो जाता है। आगे इस अधिकार में कलश १८५ में कहते हैं कि 'मोक्षार्थी भव्य जीवों को एक यही अटल सिद्धान्त अपनाना चाहिये 'मैं सदा ही एक चिन्मय परञ्ज्योति स्वरूप हूँ, शुद्ध हूँ, ये जितने भी विभाव-भाव दृष्टिगोचर हो रहे हैं, उनका लक्षण मेरे से भिन्न है, मैं उन रूप नहीं हूँ और न उन परद्रव्यों से मेरा कोई संबंध ही है। यही तत्त्व चिन्तन जब एकाग्ररूप परिणत हो जाता है तभी निर्विकल्प ध्यान प्रगट होता है। 'क्योंकि जो परद्रव्य को ग्रहण करता है वह अपराधी बंधा जाता है और जो यति स्वद्रव्य में ही गुप्त है वह निरपराधी है वह नहीं बंधता है—इस १८६वें कलश काव्य में जो "यति" शब्द है वह स्पष्ट कह रहा है कि यह अवस्था गृहस्थाश्रम में संभव नहीं है। अगले कलश १८७ में भी यही बात है कि "शुद्धात्मसेवी साधु निरपराधः।" शुद्धात्म का अनुभव करने वाला शुद्धोपयोगी मुनि ही निरपराधी है।

यह समयसार मुनियों के लिए ही है इसी बात को आगे के काव्यों में भी देखिए—जहाँ पर प्रतिक्रमण को ही विष कह दिया गया है वहाँ पर अतिक्रमण को अमृत कैसे कहा जा सकता है। इसलिये हे मुने ! तुम प्रमादी होकर अर्थात् प्रतिक्रमण छोड़कर नीचे-नीचे क्यों गिरते हो। अप्रमादी होकर ऊपर-ऊपर अधिरोहण क्यों नहीं करते हो।" यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि मुनियों की आवश्यक क्रियाओं में प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान आते हैं श्रावक की क्रियाओं में नहीं हैं। छठे गुणस्थानवर्ती मुनि प्रतिक्रमण आदि क्रियाओं को यथासमय विधिवत् करते हैं। समय या विधि का उल्लंघन कर देने से उन्हें प्रायश्चित्त का भागी होना पड़ता है। आगे निर्विकल्प ध्यान में स्थित होने पर प्रतिक्रमण आदि क्रियायें नहीं होती हैं। उस काल में प्रतिक्रमण आदि क्रियाओं को विष कह दिया है। यदि कोई मुनि प्रमादी होकर विकथा आदि कार्यों में लग जाय और प्रतिक्रमण न करे तो वह अप्रतिक्रमण उसके लिए अमृत कैसे हो सकता है। इसलिये १९० में कहा है कि जो आलस्य और प्रमाद को छोड़कर अपने आत्म स्वरूप में स्थिर हो जाता है वही मुनि परमशुद्धि को प्राप्त होता हुआ बहुत शीघ्र ही कर्मों से छूट जाता है। इस अधिकार में १८२ से लेकर १९२ तक कलश काव्य हैं।

सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार

● ●

सर्वविशुद्धज्ञानाधिकारः

अथ सर्वविशुद्धं ज्ञानमुदेति—

मन्दाक्रान्ता-वृत्तम्

नीत्वा सम्यक् प्रलयमखिलान् कर्तृभोक्त्रादिभावान्
दूरीभूतः प्रतिपदमयं वन्धमोक्षप्रक्लृप्तेः ।
शुद्धः शुद्धः स्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चिष्-
टङ्कोत्कीर्णं प्रकटमहिमा स्फूर्जति ज्ञानपुञ्जः ॥१९३॥

अथात्मनः कर्तृत्वभोक्तृत्वं कीर्तयति—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

कर्तृत्वं न स्वभावोऽस्य चितो वेदयितृत्ववत् ।
अज्ञानादेव कर्ताऽयं तदभावादकारकः ॥१९४॥

अथाकर्तृकत्वं चिन्तयति—

शिखरिणी-वृत्तम्

अकर्ता जीवोऽयं स्थित इति विशुद्धः स्वरसतः
स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिश्छुरितभुवनाभोगभवनः ।
तथाप्यस्यासौ स्याद्यदिह किल वन्धः प्रकृतिभिः
स खल्वज्ञानस्य स्फुरति महिमा कोऽपि गहनः ॥१९५॥

अथ भूयः कर्तृत्वभोक्तृत्वमामनति—

अनुष्टुप् वृत्तम्

भोक्तृत्वं न स्वभावोऽस्य स्मृतः कर्तृत्ववच्चितः ।
अज्ञानादेव भोक्ताऽयं तदभावादवेदकः ॥१९६॥

सर्व-विशुद्ध-ज्ञान-अधिकार

अब ज्ञानपुञ्ज आत्मा की महिमा कहते हैं—

मन्दाक्रान्ता छन्द (वर्णिक)

कर्त्तृं भोक्तृं सब परिणमो पूर्ण रूपेण घाते।
जो प्रत्येकं प्रतिपदमयो बंध मोक्षो न भाते॥
द्रव्यं भावो करम नशतो शुद्धचित् पूर्णभासो।
टंकोत्कीर्णो प्रकट महिमा ज्ञानपुंज प्रकाशो॥१९३॥

अब आत्मा में कर्तृत्व भोक्तृत्व का अभाव सिद्ध करते हैं—

शालिनी छंद [वर्णिक]

भोक्ता सादृश् कर्त्तृना आत्मभावो,
मूढ़ात्मा ही कर्त्तृभासो प्रभावो।
अज्ञानाभावो रहे वो अकर्त्ता
विज्ञानी भव्यो परं मोक्ष धर्त्ता॥१९४॥

अब आत्मा के अकर्तृत्वपने का वर्णन करते हैं—

पृथ्वी छन्द (वर्णिक)

स्वभाव निज शुद्धतो विकसितं चितं ज्योतिनो।
वही जगत विस्तृतो भवन व्याप्तकं आत्मनो॥
परात्म नहिं कर्तृनो नियत विश्व में कर्मणो।
निजात्म सह बंधतो अबुध सो प्रभावो घनो॥१९५॥

अब कर्तृत्व के समान भोक्तृत्व भी आत्मा का स्वभाव नहीं है-यह कहते हैं—

शालिनी छन्द (वर्णिक)

ज्यों कर्त्ता ही आत्मभावों नहीं है–
त्यों भोक्ता भी स्वात्मभावो नहीं है।
अज्ञानी जीवो सदा नित्य भोक्ता–
ज्ञानी आत्मा नित्य ही है अभोक्ता॥१९६॥

अथज्ञान्यज्ञानिस्वरूपं सूत्रयति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

अज्ञानी प्रकृतिस्वभावनिरतो नित्यं भवेद् वेदकः,
ज्ञानी तु प्रकृतिस्वभावविरतो नो जातुचिद् वेदकः।
इत्येवं नियमं निरूप्य निपुणैरज्ञानिता त्यज्यताम्,
शुद्धैकात्ममये महस्यचलितैरासेव्यतां ज्ञानिता ॥१९७॥

अथ ज्ञानिनो ज्ञातृत्वमध्यापयति—

वसन्ततिलकावृत्तम्

ज्ञानी करोति न न वेदयते च कर्म,
जानाति केवलमयं किल तत्स्वभावम्।
जानन्परं करणवेदनयोरभावात्-
शुद्धस्वभावनियतः स हि मुक्त एव ॥१९८॥

अथात्मनः कर्तृत्वं दूषयति—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

ये तु कर्त्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसा तताः।
सामान्यजनवत् तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षताम् ॥१९९॥

अथ तथैव कर्तृत्वं व्याहन्ति—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः परद्रव्यात्मतत्त्वयोः।
कर्तृकर्मत्वसम्बन्धाभावे तत्कर्तृता कुतः ॥२००॥

अथ परद्रव्यात्मतत्त्वयोः सम्बंधं निवारयति—

वसन्ततिलकावृत्तम्

एकस्य वस्तुन इहान्यतरेण सार्धं,
सम्बन्ध एव सकलोऽपि यतो निषिद्धः।
तत् कर्तृ-कर्मघटनास्ति न वस्तुभेदे,
पश्यन्त्वकर्तृ मुनयश्च जनाश्च तत्त्वम् ॥२०१॥

अब अज्ञानी भोक्ता और ज्ञानी अभोक्ता होता है—यह कहते हैं—

पृथ्वी छन्द [मात्रिक]

अबुद्ध प्रकृति स्वभाव निरतो सदा वेदको,
सुबुद्ध प्रकृति स्वभाव विरतो नहीं वेदको ।
यही नियम जानके विबुध मोह मिथ्या तजे,
विशुद्ध नित रूप एक थिर आत्मज्ञानं भजे ॥१९७॥

अब ज्ञानी ज्ञाता ही है—यह कहते हैं—

शालिनी छंद (वर्णिक)

कर्त्ता भोक्ता कर्म का ना प्रबुद्धो,
भाग्यो ज्ञाता भाव ही मात्र बुद्धो ।
कर्त्ता-भोक्ता का अभावो जभी है,
ज्ञानी शुद्धो भाव में मुक्ति ही है ॥१९८॥

सब आत्मा कर्मों का कर्त्ता है—ऐसा मानना मोक्ष में बाधक है—यह कहते हैं—

शालिनी छन्द [वर्णिक]

जो अज्ञानी अंधकारो संवृत्ता,
अन्य द्रव्यो आत्मरूपो सकर्त्ता ।
सामान्यं लोको समं मोक्ष वांच्छा,
तोभी मोक्षो ना लहे हो निरासा ॥१९९॥

अब आत्मा और पर द्रव्य में कुछ भी संबंध नहीं है—यह कहते हैं—

विद्युन्माला छंद (वर्णिक)

अन्य द्रव्यो आत्मा तत्त्वो, सर्वे सम्बन्धो ना होवे ।
कर्त्ता कर्मो सम्बन्धो ना, आत्मा दूजा कर्त्ता है ना ॥२००॥

परद्रव्य और आत्मतत्त्व में सम्बन्ध का निषेध करते हैं—

मालिनी छन्द (वर्णिक)

जगत एकहि द्रव्यो अन्य संगो निषेधो,
करम अरु सकर्त्ता न घटे वस्तु भेदो ।
सु-बुध अरु मुनी हे तत्त्व की जो प्रवृत्ती,
लखहु तुम अकर्त्ता रूप होवे निवृत्ती ॥२०१॥

अथाज्ञानिस्वभावं नेनेक्ति—

वसन्ततिलकावृत्तम्

ये तु स्वभावनियमं कलयन्ति नेम-
मज्ञानमग्नमहसो बत ते वराकाः ।
कुर्वन्ति कर्म तत एव हि भावकर्म,
कर्ता स्वयं भवति चेतन एव नान्यः ॥२०२॥

अथ कर्मणा कार्यत्वं कीर्तयति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

कार्यत्वादकृतं न कर्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो-
रज्ञायाः प्रकृते स्वकार्यफलभुग् भावानुषङ्गाकृतिः ।
नैकस्याः प्रकृतेरचित्वलसनाज्जीवोऽस्य कर्ता ततो
जीवस्यैव च कर्म सच्चिदनुगं ज्ञाता न यत्पुद्गलः ॥२०३॥

अथ प्रकृतिवादिनं सांख्यं प्रतिक्षिपति—

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

कर्मैव प्रवितर्क्य कर्तृ हतकैः क्षिप्त्वाऽत्मनः कर्तृतां
कर्तात्मैष कथंचिदित्यचलिता कैश्चिच्छ्रुतिः कोपिता ।
तेषामुद्धतमोहमुद्रितधियां बोधस्य संशुद्धये
स्याद्वादप्रतिबन्धलब्धविजया वस्तुस्थितिः स्तूयते ॥२०४॥

अथ निश्चयेनाकर्तृत्वमात्मनो वक्ति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

माऽकर्तारममी स्पृशन्तु पुरुषं सांख्या इवाप्यार्हताः
कर्तारं कलयन्तु तं किल सदा भेदावबोधादधः ।
ऊर्ध्वं तूद्धतबोधधामनियतं प्रत्यक्षमेनं स्वयं
पश्यन्तु च्युतकर्तृभावमचलं ज्ञातारमेकं परम् ॥२०५॥

भाव कर्म का कर्ता अज्ञानी है—यह कहते हैं—

वेशरी छन्द (मात्रिक)

जो स्वभाव का नियम न माने
मिथ्या में निज ज्योति डुबाने ।
दीन हुए वे कर्म करे हैं,
भाव कर्म निज कार्य न दूजे ॥२०२॥

भाव कर्म का कर्ता जीव है—यह निश्चय करते हैं—

मुक्तक छन्द (मात्रिक)

जव भाव कर्म निज कार्य रूप तव अकृत कभी न हो सकता ।
यदि जीव प्रकृति दोनों की कृति,जड़ विधि फल भोग प्रसंग व्यथा ।
इक विधि की कृति भी नहीं चूँकि वह जड़ भावों का कर्त्तृ न है ।
अतः आत्म अनुशरण जीव के, कर्म जीव ही कर्त्तृ रहे ॥२०३॥

कर्म ही रागादिक का कर्ता है—इसका निराकरण करते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

कोई स्वघाति निज कर्त्तृ दूर कर, कर्म भाव का कर्त्तृ धरे ।
यह वितर्क कर आत्म कथंचित, कर्त्ता इस श्रुत का लोप करे ।
जब तीव्र मोह से वुद्धि ढकी उन नर को निज शुद्धि के लिये ।
स्याद्वाद से विपक्ष विजय कर,ऐसी वस्तु स्थिती रहे ॥२०४॥

निश्चय से आत्मा भेद ज्ञान के वाद रागादिक का कर्ता नहीं है यह कहते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

सांख्यों के सदृश जैन मुनी भी आत्म अकर्त्ता मत माने ।
वह भेद ज्ञान के पूर्व उसे नित रागादिक कर्त्ता जाने ॥
जब भेद ज्ञान हो तभी श्रेष्ठ नित ज्ञान धाम में नियत लसे ।
प्रत्यक्ष आत्म कर्त्तृत्व रहित इक अचल परं खुद ज्ञातृ लखे ॥२०५

अथ क्षणक्षयस्वलक्षणवादिनं सौगतं निराचष्टे—

मालिनी-वृत्तम्

क्षणिकमिदमिहैकः कल्पयित्वात्मतत्त्वम्
निजमनसि विधत्ते कर्तृभोक्त्रोर्विभेदम् ।
अपहरति विमोहं तस्य नित्यामृतौघैः
स्वयमयमभिषिचंश्चित्चमत्कार एव ॥२०६॥

अथ क्षणिकैकान्तान् छिनत्ति पद्यत्रयेण—

अनुष्टुप-वृत्तम्

वृत्त्यंशभेदतोऽत्यन्तं वृत्तिमन्नाशकल्पनात् ।
अन्यः करोति भुङ्क्तेऽन्य इत्येकान्तश्चकास्तु मा ॥२०७॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

आत्मानं परिशुद्धमीप्सुभिरतिव्याप्तिं प्रपद्यान्धकैः,
कालोपाधिबलादशुद्धिमधिकां तत्रापि मत्वा परैः ।
चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य पृथुकैः शुद्धर्जुसूत्रेरितै-
रात्मा व्युज्झित एव हारवदहो निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः ॥२०८॥

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

कर्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवशतो भेदोऽस्त्वभेदोऽपि वा,
कर्ता वेदयिता च मा भवतु वा वस्त्वेव संचिन्त्यताम् ।
प्रोतासूत्र इवात्मनीह निपुणैर्भेत्तुं न शक्या क्वचित्
चिच्चिन्तामणिमालिकेयमभितोऽप्येका चकास्त्येव नः॥२०९॥

अथ व्यावहारिकदृशा तयोर्भिन्नत्वं चिन्त्यते—

रथोद्धतावृत्तम्

व्यावहारिकदृशैव केवलं कर्तृकर्म च विभिन्नमिष्यते ।
निश्चयेन यदि वस्तु चिन्त्यते कर्तृकर्म च सदैकमिष्यते॥२१०॥

क्षणिक होने से कर्ता अन्य है, भोक्ता अन्य है—इसका निराकरण करते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

हा इस जग में निज आत्म तत्त्व को क्षणिक मान इक बौद्ध रहे ।
वह अपने मन में कर्त्ता अरु भोक्ता में भेद प्रभेद कहे ॥
सो यह चेतन का चमत्कार ही नित्य कथंचित रूप लसे ।
अमृत प्रवाह से खुद सिंचन करके जब वही विमोह नसे ॥२०६

अब इस क्षणिकवाद का युक्ति के द्वारा निराकरण करते हैं—

वेशरी छंद (मात्रिक)

पर्याय सर्वथा भिन्न हुआ जो पर्यायी भी नाश हुआ तो ।
कर्त्ता पर भोक्ता पर कल्पै नहिं ऐसा एकांतहि सोहै ॥२०७॥

अब आत्मा कथंचित् क्षणिक है, सर्वथा क्षणिक नहीं है—यह कहते हैं—

मुक्तक छन्द [मात्रिक]

सम्पूर्ण रूप से शुद्ध आत्म का, इच्छुक जड़मति बौद्धों ने ।
अति व्याप्ति प्राप्त उस काल उपधि बल से बहु आत्म मलिन माने ।
ज्यों सूत्र शून्य केवल मोती लखने वाले नर हार तजा ।
त्यों ऋजू सूत्र नय से प्रेरित, चित् क्षणिक भ्रांति से आत्म तजा।२०८

भेदादि के विकल्प का त्यागकर अभेद रूप आत्मा का अनुभव करना चाहिये—यह कहते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

कर्ता अरु भोक्ता में सुयुक्ति वश, ही अभेद या भेद धरे ।
कर्त्ता ही भोक्ता हो नहिं हो पर वस्तु मात्र सविमर्श करे ।
बुध द्वारा सूत्र सुगुम्फित ज्यों मणिमाला नहिं भेदी जाती ।
त्यों निज में गुंफित चिन्तामणि की माला ही जग में भाती ।२०९

व्यवहार दृष्टि से कर्ता कर्म में भेद है, निश्चय दृष्टि से अभेद है—यह कहते हैं—

वेशरी छन्द [मात्रिक]

व्यावहारिक दृष्टि से कहे हैं, कर्त्ता कर्म विभिन्न रहे हैं ।
निश्चय नय से वस्तु पिछाने, कर्त्ता कर्म सदा इक माने ॥२१०

नर्दटक-वृत्तम्

ननु परिणाम एव किल कर्म विनिश्चयतः
स भवति नापरस्य परिणामिन एव भवेत् ।
न भवति कर्तृशून्यमिह कर्म न चैकतया
स्थितिरिह वस्तुनो भवतु कर्तृ तदेव ततः ॥२११॥

अथ वस्त्वन्तरप्रदेशं वस्तुनो न निर्लुठति पद्यत्रयेण प्राह—

पृथ्वी-वृत्तम्

वहिर्लुठति यद्यपि स्फुटदनन्तशक्तिः स्वयं
तथाप्यपरवस्तुनो विशति नान्यवस्त्वन्तरम् ।
स्वभावनियतं यतः सकलमेव वस्त्विष्यते
स्वभावचलनाकुलः किमिह मोहितः क्लिश्यते ॥२१२॥

रथोद्धता-वृत्तम्

वस्तु चैकमिह नान्यवस्तुनो येन तेन खलु वस्तु वस्तु तत् ।
निश्चयोऽयमपरोऽपरस्य कः किं करोति हि वहिर्लुठन्नपि ॥२१३॥

रथोद्धता-वृत्तम्

यत्तु वस्तु कुरुतेऽन्यवस्तुनः किंचनापि परिणामतः स्वयम् ।
व्यावहारिकदृशैव तन्मतं नान्यदस्ति किमपीह निश्चयात् ॥२१४

अथ द्रव्ये द्रव्यान्तरनिषेधं नियत्ते—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पितमतेस्तत्त्वं समुत्पश्यतो
नैकद्रव्यगतं चकास्ति किमपि द्रव्यान्तरं जातुचित् ।
ज्ञानं ज्ञेयमवैति यत्तु तदयं शुद्धस्वभावोदयः
किं द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियस्तत्त्वाच्च्यवन्ते जनाः ॥२१५॥

वस्तु ही स्वयं अपने परिणाम रूप कर्म का कर्ता है—यह कहते हैं—

वेशरी छन्द (वर्णिक)

ननु परिणाम हि कर्म न दूजा
परिणामी का कर्म कहाता ।
जव कर्त्ता विन कर्म न होता,
तव वहु रूप स्वयं ही कर्त्ता ।।२११।।

एक वस्तु में अन्य वस्तु का प्रवेश कथंचित् नहीं है—यह कहते हैं—

मालिनी छंद (वर्णिक)

यदपि वस्तु नंत शक्ती लहे है
तदपि इक हि वस्तु अन्य में ना रहे है ।
जव खुद यह आत्मा आत्म में ही रमे है—
तव कलुपित मोही आत्म से क्यों डिगे है ।।२१२।।

एक वस्तु अन्य वस्तु रूप नहीं होती—यह कहते हैं—

वेशरी छन्द (मात्रिक)

जग में वस्तु न अन्य स्वरूपी, अत: वस्तु उस रूप स्वरूपी ।
वाहर में भ्रमता जव सोई, अन्य अन्य का करे न कोई ।।२१३

एक वस्तु अन्य वस्तु का कुछ करती है, वह व्यवहार दृष्टि है—निश्चय से नहीं ।

वेशरी छन्द (मात्रिक)

स्वयं परिणमन रूप धरे है, पर का पर वस्तू जु करे है ।
यह सव व्यवहारिक दृष्टी से, जग में कुछ नहिंनिश्चय ही से ।।२१४

द्रव्य में द्रव्यान्तर के प्रवेश का निपेध करते हैं—

हरिणी छंद (वर्णिक)

लहत निज में वुद्धी ज्ञानी स्वयं निज को लखे ।
सतत इक में वस्तू दूजी कभी नहिं जो लसे ।।
स्व निज गुण के द्वारा ज्ञानी हि ज्ञेय सदा लखे ।
उदय निज भावों का मोही वृथा पर में फँसे ।।२१५।।

अथ स्वभावस्वभाविनोर्भेदं चकास्ति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात् किं स्वभावस्य शेष-
मन्यद् द्रव्यं भवति यदि वा तस्य किं स्यात् स्वभावः ।
ज्योत्स्नारूपं स्नपयति भुवं नैव तस्यास्ति भूमि-
र्ज्ञानं ज्ञेयं कलयति सदा ज्ञेयमस्यास्ति नैव ॥२१६॥

अथ ज्ञानस्वभावं वावच्यते—

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

रागद्वेषद्वयमुदयते तावदेतन्न यावत्
ज्ञानं ज्ञानं भवति न पुनर्बोध्यतां याति बोध्यम् ।
ज्ञानं ज्ञानं भवतु तदिदं न्यक्कृताज्ञानभावं
भावाभावौ भवति तिरयन् येन पूर्णस्वभावः ॥२१७॥

अथ सम्यग्दृष्टेस्तत्क्षयमाशंसति—

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

रागद्वेषाविह हि भवति ज्ञानमज्ञानभावात्
तौ वस्तुत्वप्रणिहितदृशा दृश्यमानौ न किंचित् ।
सम्यग्दृष्टिः क्षपयतु ततस्तत्त्वदृष्ट्या स्फुटन्तौ
ज्ञानज्योतिर्ज्वलति सहजं येन पूर्णाचलार्चिः ॥२१८॥

अथ रागद्वेषोत्पादककारणं सङ्गच्छते—

शालिनी-वृत्तम्

रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्ट्या
नान्यद् द्रव्यं वीक्ष्यते किञ्चनापि ।
सर्वद्रव्योत्पत्तिरन्तश्चकास्ति
व्यक्तात्यन्तं स्वस्वभावेन यस्मात् ॥२१९॥

अथ सद्धेतुत्वमात्मनः सङ्गिरते—

मालिनी-वृत्तम्

यदिह भवति रागद्वेषदोषप्रसूतिः
कतरदपि परेषां दूषणं नास्ति तत्र ।
स्वसयमपराधी तत्र सर्पत्यबोधो
भवतु विदितमस्तं यात्वबोधोऽस्मि बोधः ॥२२०॥

स्वभाव और स्वभावी में कथंचित् भेद का निरूपण करते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

उस शुद्ध द्रव्य का, स्वरस रूप से सदा परिणमन जग में है ।
उससे भिन्न हि शेष द्रव्य, आत्मा के कभी न होते हैं ।
चांदनी किरण पृथ्वी धोती, चांदनी रूप पृथ्वी न कभी ।
त्यों ज्ञेय ज्ञान में प्रतिबिम्बित, नहिं ज्ञान रूप है ज्ञेय कभी ॥२१६

ज्ञान में रागद्वेष का उदय कहाँ तक रहता है—यह कहते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

तब तक यह ज्ञान ज्ञान रूप, अरु ज्ञेय ज्ञेयपन नहीं लहे ।
तब तक राग द्वेष ये दोनों, सदा हि निश्चित उदित रहे ॥
अतः ज्ञान अज्ञान भाव को, तज कर ज्ञान स्वरूप गहे ।
जिससे ही व्यय उत्पाद दूर कर, आत्मा पूर्ण स्वरूप लहे ॥२१७

अब सम्यग्दृष्टि के रागद्वेष के विनाश की प्रशंसा करते हैं—

मुक्तक छन्द (मात्रिक)

ज्ञानहि निज में अज्ञान भाव से, राग द्वेष परिणाम धरे ।
जब वस्तु तत्त्व पर दृष्टि दिया, तब राग द्वेष कुछ नहीं करे ।
इसलिये प्रकट रागादिक को सदृष्टि वृद्धि से जब नाशे ।
जिससे पूर्ण अचल किरणें युत सहजिक ज्ञान ज्योति भासे ॥२१८

रागद्वेप का उत्पादक पर द्रव्य नहीं है—यह कहते हैं—

मालिनी छंद (वर्णिक)

ननु अनुभव से जो राग औ द्वेष में ही ।
निमित कछु हु वस्तू ना दिखे सर्वदा ही ॥
सतत उपज द्रव्यें आत्म के रूप में ही ।
प्रकट जब विभूति दूर हो द्वेष भारी ॥२१९॥

रागद्वेष की उत्पत्ति का कारण आत्मा का अज्ञान ही है—

मालिनी छंद (वर्णिक)

यदि खुद निज में ही दोष की हो प्रसूती ।
तदपि न उसमें किंच भी द्रव्य दोषी ॥
यह विदित स्व दोषी दोष व्यापे स्वयं ही ।
विलय सबहि मिथ्या भाव मैं ज्ञान रूपी ॥२२०॥

अथान्यनिमित्तत्वं तयोस्तीर्यते—

रथोद्धता-वृत्तम्

रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते ।
उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनीं शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः ॥२२१॥

अथ बोधाबोधयोरन्यत्वमुन्नीयते—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा बोधो न बोध्यादयं
यायात्कामपि विक्रियां तत इतो दीपः प्रकाश्यादिव ।
तद्वस्तु स्थितिबोधवन्ध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो
रागद्वेषमया भवन्ति सहजां मुञ्चन्त्युदासीनताम् ॥२२२

अथ निश्चयप्रतिक्रमणप्रत्याख्यानालोचनाचारित्रं विन्दति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

रागद्वेषविभावमुक्तमहसो नित्यं स्वभावस्पृशः
पूर्वागामिसमस्तकर्मविकला भिन्नास्तदात्वोदयात् ।
दूरारूढचरित्रवैभवबलाच्चञ्चच्चिदर्चिर्मयीं
विंदन्ति स्वरसाभिषिक्तभुवनां ज्ञानस्य संचेतनाम् ॥२२३॥

अथ ज्ञानसञ्चेतनां चेतयते—

उपजाति-वृत्तम्

ज्ञानस्य सञ्चेतनयैव नित्यं, प्रकाशते ज्ञानमतीव शुद्धम् ।
अज्ञानसंचेतनया तु धावन्, बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि बन्धः ॥२२४

अथ नैष्कर्म्यमवलम्बते—

आर्या-वृत्तम्

कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषयं मनोवचःकायैः ।
परिहृत्य कर्म सर्वं परमं नैष्कर्म्यमवलम्बे ॥२२५॥

रागद्वेष की उत्पत्ति में पर द्रव्य को ही निमित्त मानने का निषेध—

दोधक छंद (वर्णिक)

जो रति आदिक भाव वखाने, वो पर द्रव्य निमित्तिक माने।
वुद्धि हि भ्रष्ट निजातम परे वे, मोह नदी नहि पार करें वे ।।२२१

वाह्य पदार्थ जीव को रागी द्वेषी वनाने में समर्थ नहीं है—यह कहते हैं-

मरहटा छंद (मात्रिक)

ज्यों भासित अर्थों से दीपक त्यों नहीं विक्रिया प्राप्त ।
त्यों आतम अचल इक गुण महिमा युत, नहीं ज्ञेय से व्याप्त ।।
फिर वस्तु स्थिति के, ज्ञान शून्य ये, राग-द्वेष क्यों प्राप्त ?
अरु अज्ञानी यों, सहजपने क्यों, उदासीनता त्याग ।।२२२

निश्चय प्रतिक्रमण प्रत्याख्यानालोचना का वर्णन करते हैं—

मरहटा छंद (मात्रिक)

जो रागादिक सव, रहित तेज युत, नित्य स्वभाव लहंत ।
वो भूत भविष्यत, कर्म रहित सव, सम्प्रति विधि फल अंत ।।
अति प्रवल चरित के, वैभव वल से चेतन ज्ञान लहंत ।
जज्वलति ज्योति से, स्वरस रूप से, तीनों लोक लसंत ।।२२३

ज्ञान चेतना और अज्ञान चेतना (कर्म चेतना-कर्मफल चेतना) का फल दिखाते हैं—

दोधक छंद (वर्णिक)

ज्ञायक भाव धरे निज में ही—
ज्ञान विशुद्ध प्रकाशित ज्यों ही ।
योग विभाव सुवंध फिरे हैं
ज्ञान विशुद्ध स्वभाव हरे हैं ।।२२४।।

इन दोनों में सकल कर्म त्याग की भावना को कहते हैं—

दोधक छंद (वर्णिक)

जो त्रय काल त्रियोग निहारा, औ कृत कारित मोदन द्वारा ।
कर्म किये मम सर्व नशूँ मैं, मुक्ति परं पद नित्य लहूँ मैं ।।२२५

अथ स्वस्वरूपप्रतिक्रमणं चङ्क्रम्यते—

आर्या-वृत्तम्

मोहाद्यदहमकार्षं समस्तमपि कर्म तत्प्रतिक्रम्य ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मनावर्त्ते ॥२२६॥

इति प्रतिक्रमणकल्पः समाप्तः

अथालोचनामालोचयति—

आर्या-वृत्तम्

मोहविलासविजृंभितमिदमुदयत्कर्म सकलमालोच्य ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्त्ते ॥२२७॥

इति आलोचनाकल्पः समाप्तः

अथ स्वप्रत्याख्यानमाख्यायते—

आर्या-वृत्तम्

प्रत्याख्याय भविष्यत्कर्म समस्तं निरस्तसंमोहः ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्त्ते ॥२२८॥

इति प्रत्याख्यानकल्पः समाप्तः

अथैतत्त्रयं भायते—

उपजाति-वृत्तम्

समस्तमित्येवमपास्य कर्म, त्रैकालिकं शुद्धनयावलम्बी ।
विलीनमोहो रहितं विकारैश्चिन्मात्रमात्मानमथावलम्बे ॥२२९॥

अथ सकलकर्मफलं संन्यासभावनां नाटयति—

आर्या-वृत्तम्

विगलन्तु कर्मविषतरुफलानि मम भुक्तिमन्तरेणैव ।
संचेतयेऽहमचलं चैतन्यात्मानमात्मानम् ॥२३०॥

अथात्मतत्त्वे कालावलीं सफलामभिरमयति—

वसंततिलका-वृत्तम्

निःशेषकर्मफलसंन्यसनान्ममैवं
सर्वक्रियान्तर–विहार–निवृत्तवृत्तेः ।
चैतन्यलक्ष्म भजतो भृशमात्मतत्त्वं
कालावलीयमचलस्य वहत्वनन्ता ॥२३१॥

स्व स्वरूप प्रतिक्रमण का अब वर्णन करते हैं—

दोधक छंद (वर्णिक)

मोह वशी मम कर्म किये थे, सर्व प्रतिक्रमणं करनी के।
सर्व ही कर्म विमुक्त रहूँ मैं, सो निज में निजरूप लखूँ मैं ॥२२६

प्रतिक्रमण कल्प समाप्त

अब आलोचना का वर्णन करते हैं—

वेसरी छंद (मात्रिक)

मोह परिणती फैल रही जो, उदयागत इन कर्मों की जो।
आलोचन कर मैं निष्कर्मी, चेतनरूप रहे निज में ही ॥२२७

आलोचना कल्प समाप्त

अब प्रत्याख्यान कल्प का वर्णन करते हैं—

वेसरी छंद (मात्रिक)

जो भविष्य के सब कर्मों का, प्रत्याख्यान करे जिसका हाँ।
मोह नशा ऐसा मैं धर्मी, निज में रखकर बनूँ अकर्मी ॥२२८

प्रत्याख्यान कल्प समाप्त

अब ज्ञानी जीव की भावना करते हैं—

वेसरी छन्द (मात्रिक)

इस प्रकार त्रैकालिक सब ही, कर्मों का मैं त्याग करूँ जी।
मोह विकार रहित निज ही का, अवलम्बन ले शुद्धनयों का ॥२२९

अब समस्त कर्मफल के त्याग की भावना को कहते हैं—

वेसरी छन्द (मात्रिक)

ज्ञानी जीव विचार करे है, कर्म रूप विष वृक्ष फले है।
भोग बिना यह फल खिर जावे, चित्स्वरूप में अचल रमावें ॥२३०

कर्म फलों का त्याग करने से आत्मा चैतन्य तत्त्व को प्राप्त होता है—

वेसरी छन्द (मात्रिक)

कर्मों का फल त्याग किया जो, सर्व क्रिया की वृत्ति हटी सो।
"अभयमती" का काल अनंते, अतिशय स्वरस भजन में बीते ॥२३१

अथ कर्मफलभुक्ति भनक्ति—

वसंततिलका-वृत्तम्

यः पूर्वभावकृतकर्मविषद्रुमाणां
भुंक्ते फलानि न खलु स्वत एव तृप्तः ।
आपातकालरमणीयमुदर्करम्यं
निष्कर्मशर्ममयमेति दशान्तरं सः ॥२३२॥

अथ प्रशमरसपानं पाययति—

स्रग्धरा-वृत्तम्

अत्यन्तं भावयित्वा विरतिमविरतं कर्मणस्तत्फलाच्च
प्रस्पष्टं नाटयित्वा प्रलयनमखिलाऽज्ञानसंचेतनाया ।
पूर्णं कृत्वा स्वभावं स्वरसपरिगतं ज्ञानसंचेतनां स्वां
सानन्दं नाटयन्तः प्रशमरसमितः सर्वकालं पिबन्तु ॥२३३॥

अथेतो ज्ञानं विवेचयति—

वंशस्थ-वृत्तम्

इतः पदार्थप्रथनावगुण्ठनात्,
विना कृतेरेकमनाकुलं ज्वलत् ।
समस्तवस्तु व्यतिरेकनिश्चयाद्,
विवेचितं ज्ञानमिहावतिष्ठते ॥२३४॥

अथ ज्ञानस्य मध्याद्यन्तराहित्यमर्हते—

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

अन्येभ्यो व्यतिरिक्तमात्मनियतं बिभ्रत्पृथग्वस्तुता-
मादानोज्झनशून्यमेतदमलं ज्ञानं तथावस्थितम् ।
मध्याद्यन्तविभागमुक्तसहजस्फारप्रभाभासुरः,
शुद्धज्ञानघनो यथास्य महिमा नित्योदितस्तिष्ठति ॥२३५॥

अथात्मधारणमनुमोदते—

उपजाति-वृत्तम्

उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्, तथात्तमादेयमशेषतस्तत् ।
यदात्मनः संहृतसर्वशक्तेः पूर्णस्य सन्धारणमात्मनीह ॥२३६॥

कर्म फल का नहीं भोगने वाला मोक्ष प्राप्त करता है—

वेसरी छन्द (मात्रिक)

जो निश्चय से तृप्त स्वयं में, पूर्व कृत्य विधि-वृक्ष फलों में।
नहिं भोगेच्छुक सभी भवों में—रम्य स्वरस जो मोक्ष लहे मैं ।।२३२

ज्ञानी जन ज्ञान चेतना को प्राप्त कर शान्तरस का पान करें—

मरहटा छन्द (मात्रिक)

बुध संत कर्म से, उसके फल से, अति विरक्ति को प्राप्त ।
अज्ञान हि चेतन पूर्ण नाश कर, निज रस से है व्याप्त ।।
निज भाव तजे ना-ज्ञान चेतना को हि नचावे नाच ।
वह प्रमोद धर पूर्ण निरन्तर, प्रशम स्वरस को प्राप्त ।।२३३

अब आगे एक निराकुल ज्ञान ही शेष रहता है—यह कहते हैं—

वंशस्थ छन्द (वर्णिक)

अतः सभी वस्तु सहाय भूत से—
निराकृती एक निराकुलं लसे ।
समस्त द्रव्यें नित भिन्न युक्ति से
पृथक हुआ ज्ञान स्वरूप में लसे ।।२३४।।

ज्ञान की मध्य आदि और अंत रहित अवस्था की प्रशंसा करते हैं—

गीतिका छन्द (मात्रिक)

जो विभिन्न स्वरूप निश्चल, पृथक वस्तुपना लहे ।
ग्रहण त्याग रहित अमल यह ज्ञान निश्चल त्यों रहे ।।
जो अनादि अनंत संस्थित सहज भासित ही कहे ।
शुद्ध ज्ञान स्वरूप महिमा नित उदय दैदीप्य है ।।२३५।।

आत्मा की आत्मा में ही स्थिति की प्रशंसा करते हैं—

वंशस्थ छन्द (वर्णिक)

विभाव शक्ती सब रोकता जभी
सु-पूर्ण आत्मा निज रूप में तभी ।
वही विवेकी सब हेय को जहे
सदा उपादेय पदार्थ को गहे ।।२३६।।

अथास्यानाहारकत्वं शङ्क्यते—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

व्यतिरिक्तं परद्रव्यादेवं ज्ञानमवस्थितं ।
कथमाहारकं तत्स्याद्येन देहोऽस्य शङ्क्यते ॥२३७॥

अथालिङ्गमालिङ्ग्यते—

अनुष्टुप् वृत्तम्

एवं ज्ञानस्य शुद्धस्य, देह एव न विद्यते ।
ततो देहमयं ज्ञातुर्न लिङ्गं मोक्षकारणं ॥२३८॥

तर्हि को मोक्षमार्गः ? इति चेत्—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

दर्शनज्ञानचारित्र-त्रयात्मा तत्त्वमात्मनः ।
एक एव सदा सेव्यो, मोक्षमार्गो मुमुक्षुणा ॥२३९॥

अथ तमेव मोक्षमार्गं मार्गयति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

एको मोक्षपथो य एव नियतो दृग्ज्ञप्ति वृत्यात्मक-
स्तत्रैव स्थितिमेति यस्तमनिशं ध्यायेच्च तं चेतति ।
तस्मिन्नेव निरन्तरं विहरति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन्,
सोऽवश्यं समयस्य सारमचिरान्नित्योदयं विन्दति ॥२४०॥

अथ लिङ्गस्य वैयर्थ्यं सार्थयति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

ये त्वेनं परिहृत्य संवृतिपथ-प्रस्थापितेनात्मना,
लिङ्गे द्रव्यमये वहन्ति ममतां तत्त्वावबोधच्युताः ।
नित्योद्योतमखण्डमेकमतुलालोकं स्वभावप्रभा-
प्राग्भारं समयस्य सारममलं नाद्यापि पश्यन्ति ते ॥२४१॥

अथ व्यवहारं विमूढयति—

वियोगिनी-वृत्तम्

व्यवहारविमूढदृष्टयः परमार्थं कलयन्ति नो जनाः।
तुषबोधविमुग्धबुद्धयः कलयन्तीह तुषं न तण्डुलं ॥२४२॥

अब ज्ञान के अनाहारकपने का वर्णन करते हैं—

वंशस्थ छन्द (वर्णिक)

सदा वही ज्ञान निजी स्वरूप है, सभी पदार्थों सह भिन्न रूप है।
सकर्म आहारक भी नहीं गहे, अतः न शंका इस देह की लहे ॥२३७

ज्ञानी के देहमय लिंग मुक्ति कारण नहीं है यह कहते हैं—

वंशस्थ छन्द (वर्णिक)

सुधी सदा शुद्ध स्वरूप ज्ञान के, नहीं कभी देह कहे विभाव से।
अतः कहे देह स्वरूपलिंग जो, कभी नहीं निश्चय मोक्ष हेतु वो।२३८

दर्शन ज्ञान चारित्र ही मोक्ष मार्ग है यह कहते हैं—

वंशस्थ छन्द (वर्णिक)

यही निजी दर्शन ज्ञान वृत्ति है, यही सदा निश्चय मोक्ष हेतु है।
अतः मुमुक्षु खलु मार्ग एक ही, सदा स्वतः सेवन योग्य रूप ही।२३९

दर्शन ज्ञान चारित्र में ही स्थित होने की प्रेरणा करते हैं—

गीतिका छन्द (मात्रिक)

मुक्ति पथ जो, इक नियत दृग, ज्ञान चरित स्वरूप है।
ठहर कर उसमें पुरुष निज, को भजे उस रूप है ॥
अन्य द्रव्यों का नहीं कर, स्पर्श उसमें ही रमें।
वह नियत यह समयसार सु उदित निज में ही जमें ॥२४०।

जो केवल व्यवहार मार्ग का आश्रय करते हैं वे समयसार के दर्शन से वंचित रहते हैं—

गीतिका छन्द (मात्रिक)

तत्त्व ज्ञान रहित पुरुष जो, निश्चय मुक्ति पथ जहे।
उपचरित शिव पथ में स्थित द्रव्यलिंग स्वयं गहे ॥
वह समय के सार को नहिं आज तक निज में लखे।
जो अमल उद्योत अनुपम, नित स्वभावों में लसे ॥२४१॥

व्यवहार दृष्टि वाले जीव परमार्थ को नहीं पाते—

चम्पकमाला छन्द (वर्णिक)

मूढ़मती जो हैं व्यवहारी, निश्चय वो ना जानत न्यारी।
जो तुष में ही बुद्धि लगावे, धान्य लहे ना वो दुख पावे ॥२४२॥

द्रव्यलिङ्गिनां कुतः स्वरूपा प्राप्तिः ? इति चेत्—

स्वागता-वृत्तम्

द्रव्यलिङ्गममकारमीलितैर्दृश्यते समयसार एव न ।
द्रव्यलिङ्गमिह यत्किलान्यतो ज्ञानमेकमिदमेव हि स्वतः ॥२४३॥

अथ शास्त्रे परमामन्यते—

मालिनी वृत्तम्

अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पै-
रयमिह परमार्थश्चेत्यतां नित्यमेकः ।
स्वरसविसरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रान्,
न खलु समयसारादुत्तरं किंचिदस्ति ॥२४४॥

अथ शास्त्रं परिसमापयत् तन्माहात्म्यमावर्ण्यते—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

इदमेकं जगच्चक्षु-रक्षयं याति पूर्णतां ।
विज्ञानघनमानन्द-मयमध्यक्षतां नयत् ॥२४५॥

अथात्मतत्त्वोपसंहारं दध्वन्यते—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

इतीदमात्मनस्तत्त्वं ज्ञानमात्रमवस्थितं ।
अखण्डमेकमचलं स्वसंवेद्यमबाधितं ॥२४६॥

सर्वविशुद्धि अधिकारः समाप्तः

द्रव्यलिंग में ममत्व रखने वाले को समयसार का ज्ञान नहीं होता—

चम्पकमाला छन्द (वर्णिक)

लिंग विमोही आत्म न जाने, ज्ञान स्वतः औ लिंग विराने ।
मात्र न चश्मा वस्तु दिखावे, मात्रहि भेषी मोक्ष न जावे ॥२४३॥

एक परमार्थ के ही अनुभव करने का उपदेश देते हैं—

चम्पकमाला छन्द (वर्णिक)

साधु कहे ज्यादा मत बोलो-
निश्चित आत्मा का पट खोलो ।
स्वारस भारी ज्ञान प्रसारी,
अमृतसारी अन्य विकारी ॥२४४॥

अब शास्त्र पूर्णता को प्राप्त होता है—यह कहते हैं—

चम्पकमाला छन्द (वर्णिक)

आत्म प्रभू को दर्श दिखाता, विश्व दृशिः ज्ञाता अरु द्रष्टा ।
एक स्वरूपी जो अविनाशी, ज्ञान यही है पूर्ण प्रकाशी ॥२४५॥

आत्म तत्त्व ज्ञान मात्र है—यह कहते हुए उपसंहार करते हैं—

चम्पकमाला छन्द (वर्णिक)

निश्चित जो है आत्मिक ज्ञाता, तत्त्व प्रमात्रं ज्ञान कहाता ।
निश्चल स्वात्मा वेद्य अबाधी, सर्वविशुद्धी ज्ञान प्रतापी ॥२४६॥

सर्वविशुद्धि अधिकार समाप्त

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार सार

इस अधिकार में इसी बात पर अधिक जोर दिया गया है कि अज्ञान से ही यह आत्मा कर्मों का कर्ता-भोक्ता है किन्तु ज्ञानी आत्मा अपने ज्ञान के बल से कर्ता भोक्ता नहीं होता है। पर द्रव्य और आत्मतत्त्व में कर्ता कर्मपनेका संबंध नहीं है क्योंकि वास्तविक दृष्टि से देखा जाये तो एक वस्तु का अन्य वस्तु के साथ कोई संबंध नहीं है। इसीलिये अमृतचंद्रसूरि काव्य २०१ में कहते हैं कि 'पश्यन्त्वकर्तृ मुनयश्च जना स्वतत्त्वं' मुनिजन अपने आत्मतत्त्व को अकर्तारूप देखें। आगे स्वयं आचार्य २०२ काव्य में भावकर्म का कर्ता चेतन को कह रहे हैं। इसी बात को नयविवक्षा से स्पष्ट करते हैं कि जैसे सांख्य सर्वथा ही पुरुष को अकर्ता मानता है वैसे ही तुम स्याद्वादी सर्वथा अकर्ता मत मानो क्योंकि भेदज्ञान के पहले-पहले यह आत्मा कर्ता है किंतु आगे निर्विकल्प ध्यान में यह आत्मा ज्ञातामात्र है कर्ता नहीं है।' श्री जयसेनाचार्य ने अपनी टीका में यह बात स्पष्ट की है कि "योऽसौ वस्तुस्वरूपं जानाति स सरागसम्यग्दृष्टिः सन्नशुभकर्मकर्तृत्वं मुंचति। निश्चयचारित्राविनाभाविवीतरागसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा शुभाशुभसर्वकर्मकर्तृत्वं च मुंचति[1]।" इस तरह जो वस्तु के स्वरूप को जानता है वह सरागसम्यग्दृष्टि होता हुआ अशुभकर्म के कर्तृत्व को छोड़ता है। पुनः निश्चय चारित्र से अविनाभावी ऐसा वीतरागसम्यग्दृष्टि होकर शुभ-अशुभ सर्व कर्म के कर्तृत्व को छोड़ देता है। सातवें गुणस्थान तक महामुनि सरागसम्यग्दृष्टि हैं, इससे आगे वीतराग सम्यग्दृष्टि माना गया है।

कलश २०६, २०७ और २०८ में कहते हैं कि जैसे बौद्धों ने आत्मा को क्षणिक मानकर कर्ता और भोक्ता में सर्वथा भेद कर दिया है वैसा भी आप स्याद्वादी मत मानें अर्थात् उसका कहना हैं कि कर्म तो एक जीव करता है वह उसी क्षण नष्ट हो जाता है तो दूसरा ही जीव उसके फल को भोगता है। यह एकांत मान्यता भी ठीक नहीं है। आचार्य देव का तो कहना है कि आत्मा व्यवहार नय से कर्मों का कर्ता और भोक्ता है किन्तु निश्चय से नहीं है अतः वस्तु स्वरूप के चितवन के समय निश्चय नय का अवलंबन लेकर आत्मा को कर्ता भोक्ता से रहित शुद्ध चिन्मात्र एक ज्ञायक स्वरूप ही चितवन करना चाहिए।

कलश २१८ में कहा है कि "इस संसार में ज्ञान ही अज्ञान भाव से राग द्वेष रूप परिणत हो रहा है। द्रव्यदृष्टि से विचार किया जाय तो

---

१. समयसार गाथा ९७ तात्पर्यवृत्ति टीका।

ये रागद्वेष हैं ही नहीं। इसलिये सम्यग्दृष्टि को तत्त्वदृष्टि का अवलंबन लेकर इन रागद्वेषोंका क्षय कर देना चाहिए। आगे कहते हैं कि निरंतर ज्ञान की संचेतना (सम्यक् अनुभव) से ही ज्ञान अत्यन्त शुद्ध हो जाता है। इसलिए महामुनि कैसी भावना करते हैं सो ही कलश २२५ से प्रगट करते हैं—"मैं भूत वर्तमान भविष्यत् काल संबंधी समस्त कर्म को मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदना से त्याग करके परम निष्कर्म-निर्विकल्प अवस्था का अवलंबन लेता हूँ। मैंने मोह से भूत काल में जो कर्म किये हैं उन कर्मों का प्रतिक्रमण करके अर्थात् उनको अपने से दूर करके निष्कर्म चैतन्यस्वरूप अपनी आत्मा में ही वर्तन करता हूँ।' यह निश्चय प्रतिक्रमण है जो कि वचनातीत है। निर्विकल्प ध्यान रूप है ऐसा नियमसार में उल्लेख है। इसी प्रकार निश्चय आलोचना और निश्चय प्रत्याख्यान को कहते हैं—'मोह के साथ उदय में आये हुए सभी कर्म की आलोचना करके मैं अपनी आत्मा के द्वारा ही सर्वकर्म रहित अपनी आत्मा में ही नित्य वर्तन करता हूँ। मैं भविष्य के समस्त कर्मों का प्रत्याख्यान करके मोह से रहित होता हुआ कर्म रहित चैतन्यस्वरूप अपनी आत्मा में ही वर्तन करता हूँ। इस प्रकार से शुद्धनय का अव-लंबन लेकर शुद्धोपयोगी मुनि शुद्धचिन्मात्र अपनी आत्मा में स्थित हो जाते हैं।

पुनः कर्म के फल का त्याग कैसे करना। इसकी भावना भायी गई है—'कर्मरूपी विषवृक्ष के फल मेरे द्वारा भोगे विना ही खिर जायें, मैं चैतन्यस्वरूप आत्मा में निश्चल होकर अनुभव करता हूँ।' इस प्रकार से मुनि निश्चयनय के अवलंबन से और भी सोचता है कि मेरे यह औदारिक आदि शरीर नहीं है और न आहार ही है क्योंकि मैं मात्र ज्ञान से ही वना हुआ हूँ। अथवा चैतन्यमयी धातु की मूर्ति हूँ। और जव शुद्ध ज्ञान रूप आत्मा के शरीर नहीं है तव शरीर के आश्रित होने वाले श्रावक लिंग–मुनिलिंग भी मेरे नहीं है। वस मात्र दर्शन ज्ञान चारित्र के ऐक्यरूप आत्मा ही मोक्ष का मार्ग है।' यहां पर श्री अमृतचंद्र सूरि ने स्पष्ट किया है कि जो मुनिवेष आदि द्रव्यलिंग को ही सर्वथा मोक्ष का मार्ग मानते हैं सो ठीक नहीं है वे समय के सार को अर्थात् आत्मा की शुद्ध अवस्था को नहीं प्राप्त कर सकते हैं। मूल समयसार कर्ता श्री कुन्दकुन्द देव ने इसी विषय में स्वयं नय विवक्षा स्पष्ट की है यथा—

'ववहारिओ पुण णओ दोण्णिवि लिंगाणि भणइ मोक्खपहे।
णिच्छयणओ ण इच्छइ मोक्खपहे सव्वलिंगाणि ॥४१४॥

व्यवहारनय तो श्रावक और मुनि के भेद से दोनों प्रकार के लिंगों को मोक्ष मार्ग में कहता है। किन्तु निश्चय नय तो शुद्ध आत्मा के निर्विकल्प ध्यान को ही मोक्षमार्ग मानता है। और वह ध्यान सर्वपरिग्रहत्यागी महामुनि के ही सम्भव है यह बात स्वयं आचार्यदेव ने समयसार में कही हुई है। यथा—

जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा।
णवि कम्मं णोकम्मं चेदा चेयेइ एयत्तं ॥१८८॥

जो सर्वपरिग्रह से रहित हैं वे ही मुनि अपनी आत्मा में आत्मा को ध्याते हैं वे ऐसा अनुभव करते हैं कि मेरी आत्मा में कर्म नोकर्म नहीं है मैं इन सबसे भिन्न मात्र एक ज्ञान स्वरूप हूँ।

यहाँ पर तो आचार्यदेव ने मुनिवेष में होनेवाले ममकार अहंकार भाव को छुड़ाया है। यह बात निश्चित है कि बिना मुनिमुद्रा ग्रहण किये आज तक न कोई मोक्ष गये हैं न जायेंगे ही, भले ही वे तीर्थङ्कर ही क्यों न हों। अतः नयविवक्षा को समझकर समयसार या समयसार कलश को पढ़ने वाले ही सम्यग्दृष्टि हैं। इस प्रकार एक शुद्ध ज्ञानमात्र आत्मा की ही भावना करने का इस ग्रन्थ में उपदेश है। यहाँ इस अधिकार में १९३ से २४६ तक कलश काव्य हैं।

स्याद्वादाधिकार

अथ स्याद्वादाधिकारः

अथ स्वरूपनिरूपणानन्तरं विशदस्याद्वादविद्यानवद्यवादविनोदवेदनाय पातिकापद्यं निगद्यते—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

अत्र स्याद्वादशुद्धयर्थं (सिद्धयर्थं) वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः ।
उपायोपेयभावश्च मनाग्भूयोऽपि चिन्त्यते ॥२४७॥

अथ तत्र ज्ञानस्यातदात्मकत्ववादिवादमनूद्य तत्समाधान-सन्धान मादधते–

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

बाह्यार्थैः परिपीतमुज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवद्,
विश्रान्तं पररूप एव परितो, ज्ञानं पशोः सीदति ।
यत्तत्तत्तदिह स्वरूपत इति स्याद्वादिनस्तत्पुनः,
दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः, पूर्णं समुन्मज्जति ॥२४८॥

अथाभिन्नवादिनो मतमाशङ्क्य स्याद्भिन्नत्वं समाचेष्टते—

शार्दूलविक्रीडित वृत्तम्

विश्वं ज्ञानमिति प्रतर्क्य सकलं, दृष्ट्वा स्वतत्त्वाशया ।
भूत्वा विश्वमयः पशुः पशुरिव स्वच्छन्दमाचेष्टते ॥
यत्तत्तत्पररूपतो न तदिति स्याद्वाददर्शी पुनः,
विश्वाद्भिन्नमविश्वविश्वघटितं तस्य स्वतत्त्वं स्पृशेत् ॥२४९॥

अथानेकत्ववादमारेक्यैकत्वमोरकते—

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

बाह्यार्थग्रहणस्वभावभरतो विश्वग्विचित्रोल्लस-
ज्ज्ञेयाकारविशीर्णशक्तिरभितस्त्रुटचन् पशुर्नश्यति ।
एकद्रव्यतया सदाप्युदितया भेदभ्रमं ध्वंसयन्-
नेकं ज्ञानमबाधितानुभवनं पश्यत्यनेकान्तवित् ॥२५०॥

स्याद्वाद्-अधिकार

स्याद्वाद वस्तु तत्त्व का व्यवस्थापक है—यह कहते हैं—

दोहा छंद (मात्रिक)

स्याद्वाद शुद्धी निमित्त कहते तत्व यथार्थ ।
उपाय उपेय स्वरूप का फिर भी करें विचार ॥२४७॥

आत्मा के तत्-असत्—एक अनेक आदि भङ्गों को लेकर सिद्ध करते हैं—
प्रथम ज्ञान की तदात्मकता सिद्ध करते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

जो बहिर्ज्ञेय से पूर्ण तृप्त निज, गुण हटने से रिक्त हुआ ।
जो पूर्ण रूप पर में संस्थित, उस एकान्ती का ज्ञान नशा ॥
पर तत्स्वरूप इस स्याद्वादी का, ज्ञान जु अतिशय प्रकट हुआ ।
वह घन स्वभाव के भार रूप से पूर्ण रूप उन्मग्न हुआ ॥२४८॥

ज्ञान और ज्ञेय की अभिन्नता का निराकरण कर कथंचित् भिन्नता का प्रतिपादन करते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

जो विश्व ज्ञानमय कर विमर्श, जग निज आशा से देख लिया ।
अरु विश्व रूप अज्ञानी पशु सम, जो स्वच्छंद प्रवृत्त हुआ ॥
पर स्याद्वाददर्शी ज्ञानी जो तत्स्वरूप पर रूप नहीं ।
जो ज्ञान ज्ञेय आकार ज्ञेय, नहिं रूप आत्म अनुभूति कही ॥२४९

अव अनेकत्ववाद का निराकरण करके एकत्व का वर्णन करते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

जो बाह्य अर्थ से ग्रहण रूप, निज भाव भार से पूर्ण लसा ।
बहु ज्ञेय रूप आकार शक्ति से खंडित होकर पूर्ण नशा ॥
ऐसा एकान्ती हुआ भ्रष्ट पर स्याद्वादी जो उदित सदा ।
इक द्रव्य रूप से विभ्रम कर दूर अचल इक ज्ञान लखा ॥२५०॥

अथैकज्ञानमतमर्ति निराचिकीर्षुरनेकतां ज्ञानस्य चिकीर्षति—

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

ज्ञेयाकारकलङ्कमेचकचिति प्रक्षालनं कल्पय—
न्नेकाकार चिकीर्षया स्फुटमपि ज्ञानं पशुर्नेच्छति।
वैचित्र्येऽप्यविचित्रतामुपगतं ज्ञानं स्वतः क्षालितं
पर्यायैस्तदनेकता परिमृशन् पश्यत्यनेकान्तवित् ॥२५१॥

अथ परद्रव्यास्तित्वन्यस्तं ज्ञानं निराकृत्य स्वास्तित्वास्तिक्यमागम्यते—

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिर परद्रव्यास्तितावञ्चितः,
स्वद्रव्यानवलोकनेन परितः शून्यः पशुर्नश्यति।
स्वद्रव्यास्तितया निरूप्य निपुणं सद्यः समुन्मज्जता,
स्याद्वादी तु विशुद्धबोधमहसा पूर्णोभवन् जीवति ॥२५२॥

अथ परद्रव्यस्वरूपं ब्रह्मेतिवादिनं प्रति परद्रव्येणासदिति संन्यस्यते—

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

सर्वद्रव्यमयं प्रपद्य पुरुषं दुर्वासनावासितः
स्वद्रव्यभ्रमतः पशुः किल परद्रव्येषु विश्राम्यति।
स्याद्वादी तु समस्तवस्तुषु परद्रव्यात्मना नास्तितां,
जानन्निर्मलशुद्धबोधमहिमा स्वद्रव्यमेवाश्रयेत् ॥२५३॥

अथ परक्षेत्रास्तित्वं निराकुर्वन् स्वक्षेत्रास्तित्वं तुदति—

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

भिन्नक्षेत्रनिषण्णबोध्यनियतव्यापारनिष्ठः सदा,
सीदत्येव बहिः पतन्तमभितः पश्यन् पुमांसं पशुः।
स्वक्षेत्रास्तितया निरुद्धरभसः स्याद्वादवेदी पुनः
स्तिष्ठत्यात्मनिखातबोध्यनियतव्यापारशक्तिर्भवन् ॥२५४॥

ज्ञान की एकरूपता का निराकरण करके अनेकता का वर्णन करते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

जो ज्ञेयाकार कलंक रूप से, मलिन ज्ञान धोना चाहे ।
एकान्ती एकाकार इच्छुक, उसको यह ज्ञान नहीं भावे ।।
पर स्याद्वादी वैचित्र ज्ञान भी, एक रूप से स्वच्छ कहे ।
पर्याय अपेक्षा नैक रूप भी, ऐसा अनेकान्त परखे ।।२५१।।

पर द्रव्य के अस्तित्व का निराकरण करके स्व द्रव्य का अस्तित्व स्व में है यह कहते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

प्रत्यक्ष रूप चित्रित निश्चल, पर द्रव्य सत्व से ठगा हुआ ।
यह एकान्ती निज दर्श बिना, सम्पूर्ण रूप से शून्य कहा ।।
पर स्याद्वादी तत्क्षण निर्मल, निज ज्ञान तेज से प्रकट हुआ ।
सुचारु रूप जिनके अस्तित्व पने से पूर्ण नहिं नष्ट हुआ ।।२५२

पर द्रव्य स्वरूप ब्रह्म है-ऐसा कहने वालों के प्रति परद्रव्य का असत्पना दिखाते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

मिथ्यात्व ग्रसित एकान्ती निज को सर्व द्रव्यमय मान रहा ।
जो आत्म द्रव्य के विभ्रम से पर द्रव्यों में विश्रान्ति लहा ।।
पर शुद्ध ज्ञान की महिमा युत, स्याद्वादी सब ही द्रव्यों में ।
पर द्रव्य अपेक्षा नास्ति मान फिर भी स्वद्रव्य में लीन रहे ।।२५३

आत्मा के पर क्षेत्र में अस्तित्व को निराकरण कर स्वक्षेत्र में अस्तित्व का प्रतिपादन करते हैं—

कुंडलिया छंद (मात्रिक)

भिन्न क्षेत्र रह ज्ञेय जो, खलु व्यापार सलग्न ।
एकांती निज में सदा, सर्व ओर से मग्न ।।
सर्व ओर से मग्न बाह्य विषयों में पड़ता ।
देख निरन्तर दुखी होयके आत्म विसरता ।।
पर स्याद्वादि स्वक्षेत्र अस्ति से वेग निरोधे ।
ज्ञान शक्ति निज क्षेत्र मध्य रह ज्ञेय नियत है ।।२५४।।

अथ परक्षेत्रे नास्तित्वाभावं वदन्तं प्रति परक्षेत्रे नास्तित्वं क्वणति—

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

स्वक्षेत्रस्थितये पृथग्विधिपरक्षेत्रस्थितार्थोज्झनात्,
तुच्छीभूय पशुः प्रणश्यति चिदाकारान् सहार्थैर्वमन् ।
स्याद्वादी पु वसन् स्वधामनि परक्षेत्रे विदन्नास्तितां,
त्यक्तार्थोऽपि न तुच्छतामनुभवत्याकारकर्षी परान् ॥२५५॥

अथ स्वकालास्तित्वं प्रीणाति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

पूर्वालम्बितबोध्यनाशसमये ज्ञानस्य नाशं विदन्
सीदत्येव न किञ्चनापि कलयन् अत्यन्ततुच्छः पशुः ।
अस्तित्वं निजकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुनः,
पूर्णस्तिष्ठति बाह्यवस्तुषु मुहुर्भूत्वा विनश्यत्स्वपि ॥२५६॥

अथ परकाले नास्तित्वमाविभृते—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

अर्थालम्बनकाल एव कलयन् ज्ञानस्य सत्त्वं बहि-
र्ज्ञेयालम्बनलालसेन मनसा भ्राम्यन् पशुर्नश्यति ।
नास्तित्वं परकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदी पुनः
तिष्ठत्यात्मनि खातनित्यसहजज्ञानैकपुञ्जीभवन् ॥२५७॥

परक्षेत्र में नास्तित्व का अभाव कहने वालों के प्रति पर क्षेत्र में नास्तित्व का वर्णन करते हैं—

कुंडलिया छंद (मात्रिक)

एकांती निज क्षेत्र में रहने को सु विचार ।
अन्य क्षेत्र में रह सदा, नाना ज्ञेय पदार्थ ॥
नाना ज्ञेय पदार्थ छोड़ कर तुच्छ हुआ है ।
ज्ञेय साथ चिद् आकारों को छोड़ नशा है ॥
पर ज्ञानी निज क्षेत्र बसे पर क्षेत्र में खुद ही ।
नास्ति जान तज ज्ञेय तुच्छता लहे न फिर भी ॥२५५॥

स्वकाल में अस्तित्व का निरूपण करते हैं—

कुण्डलिया छन्द (मात्रिक)

एकान्ती जो पूर्व में आलम्बन ले जान ।
ऐसे ज्ञेय विनाश से ज्ञान विनाश बखान ॥
ज्ञान विनाश बखान तुच्छ पन से विनसे हैं ।
पर स्याद्वादि स्वकाल अपेक्षा सत्व लहे है ॥
अतः बाह्य जो ज्ञेय सु बारंबार नशे हैं ।
फिर भी निज में पूर्ण रूप से ज्ञान लसे है ॥२५६॥

पर काल में नास्तित्व का वर्णन करते हैं—

कुंडलिया छंद (मात्रिक)

एकान्ती पर ज्ञेय के आलम्बन के काल ।
में ही ज्ञान सुसत्व को करें सदा स्वीकार ॥
करें सदा स्वीकार ज्ञेय आलम्बन की जो ।
वांछा संयुत मन में करे विकल्प भ्रष्ट वो ॥
स्याद्वादी पर काल से ज्ञानहि नास्तिक माने ।
फिर भी निज में सहज ज्ञान इक पुंज लहाने ॥२५७॥

अथ स्वभावास्तित्वमनुभूयते—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

विश्रान्तः परभावभावकलनात् नित्यं बहिर्वस्तुषु
नश्यत्येव पशुः स्वभावमहिमन्येकान्तनिश्चेतनः।
सर्वस्मान्नियतात्स्वभावभवनज्ञानाद्विभक्तो भवन्
स्याद्वादी तु न नाशमेति सहजस्पष्टीकृतप्रत्ययः ॥२५८॥

अथापरपर्यायपरं ब्रह्म निषेधयन् परस्वरूपेण सदित्युद्घाटयति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

अध्यास्यात्मनि सर्वभावभवनं शुद्धस्वभावाच्च्युतः
सर्वत्राऽप्यनिवारितो गतभयः स्वैरं पशुः क्रीडति।
स्याद्वादी तु विशुद्ध एव लसति स्वस्य स्वभावं भरा-
दारूढः परभावभावविरहव्यालोकनिष्कम्पितः ॥२५९॥

अथ सर्वस्य क्षणभङ्गाभोगभङ्गिसङ्गतस्य तत्त्वस्य निरसनव्यसनं-
नित्यत्वं पणायते—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

प्रादुर्भावविराममुद्रितवहद् ज्ञानांशनानात्मना
निर्ज्ञानात् क्षणभङ्गसङ्गपतितः प्रायः पशुर्नश्यति।
स्याद्वादी तु चिदात्मना परिमृशंश्चिद्वस्तु नित्योदितं,
टङ्कोत्कीर्णघनस्वभावमहिमज्ञानं भवन् जीवति ॥२६०॥

अथ सर्वथा सत्यनित्यचित्तशातनमनित्यत्वमात्मनो ज्ञानस्य विज्ञापयति—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

टंकोत्कीर्णविशुद्धबोधविसराकारात्मतत्त्वाशया,
वाञ्छत्युच्छलदच्छचित्परिणतेर्भिन्नं पशुः किञ्चन।
ज्ञानं नित्यमनित्यतापरिगमेऽप्यासादयत्युज्ज्वलं,
स्याद्वादी तदनित्यतां परिमृशंश्चिद्वस्तुवृत्ति क्रमात् ॥२६१॥

अब स्वभाव अस्तित्व का वर्णन करते हैं—

कुंडलिया छंद (मात्रिक)

जो पर भावों को सदा आत्म भाव ही जान।
वे नित बाह्य विभूति में करें सदा विश्राम ॥
करें सदा विश्राम शुद्ध स्वाभाविक महिमा।
में जड़ रूप विनष्ट देख एकान्तिक गरिमा ॥
ज्ञानी का निज रूप परिणमन ज्ञान अपेक्षा।
सब से भिन्न सहज श्रद्धायुत भ्रष्ट न होता ॥२५८॥

अब परभाव की अपेक्षा नास्तित्व का वर्णन करते हैं—

कवित्त-छंद (मात्रिक)

एकान्ती निज आतमा में समभाव रूप से शुद्ध स्वभावहि।
से च्युत हो परभावों में हो, हो स्वच्छन्द निर्भय कर क्रीडहि ॥
स्याद्वादी आत्मिक स्वभाव में लीन सर्वथा निज के रूपहि।
हो परभाव अभाव नियत ही निश्चल पन से शुद्ध सुशोभहि २५९

अब नित्यत्व का विवेचन करते हैं—

कवित्त-छंद (मात्रिक)

एकांती उत्पाद व्ययों से मुद्रित होकर नित्य प्रवर्त्तहि।
ज्ञान अंश बहु रूप सुनिश्चित क्षण भंगुर संग पड़ा विनासहि ॥
पर स्याद्वादी चित्स्वरूप से चेतन वस्तु करे अनुभूतहि।
नित्य उदित टंकोत्कीर्ण शुद्ध महिमा युक्त ज्ञानमय जीवहि ॥२६०

अब अनित्यत्व का वर्णन करते हैं—

कवित्त छंद (मात्रिक)

एकान्तवादि टंकोत्कीर्ण नित, निर्मल ज्ञान प्रवाह स्वरूपहि।
निज आशा से ज्ञान ज्योति चित् वृत्ति से पर लह द्रव्य सुनित्यहि ॥
पर ज्ञानी चित्वस्तु परिणती, क्रम से ज्ञान अनित्य सु मानहि।
ऐसी जो ज्ञानोपलब्धि हो अनित्य मय फिर भी रह स्वच्छहि॥२६१

अथानेकान्तमतव्यवस्था सुघटेति सज्जाघटीति इति पद्यद्वयेन—

अनुष्टुप्-वृत्तम्

इत्यज्ञानविमूढानां ज्ञानमात्रं प्रसाधयन् ।
आत्मतत्त्वमनेकान्तः स्वयमेवानुभूयते ॥२६२॥

अनुष्टुप्-वृत्तम्

एवं तत्त्वव्यवस्थित्या स्वं व्यवस्थापयन् स्वयं ।
अलङ्घ्यशासनं जैनमनेकान्तो व्यवस्थितः ॥२६३॥

इति स्याद्वादाधिकारः समाप्तः

अब अनेकान्त मत की व्यवस्था का वर्णन करते हैं—

रथोद्धता छंद (मात्रिक)

यो प्रकार जड़ से त्रिमूढ़ जो, अज्ञ प्राणि कहँ ज्ञान मात्र से ।
आत्मतत्त्व नित सिद्ध रूप जो, स्याद्वाद अनुभूति प्राप्त हो ॥२६२

रथोद्धता छंद (वर्णिक)

यों तत्व सुव्यवस्थित रूप से, जो स्वयं सतत आत्म लीन है ।
स्याद्वाद सु जिनेन्द्रदेव का, जैन-शासन अलंघ्य तिष्ठत ॥२६३

स्याद्वाद-अधिकार समाप्त

स्याद्वाद् अधिकार सार

इस अधिकार में स्याद्वाद की शुद्धि के लिए वस्तु तत्त्व की व्यवस्था पर तथा उपाय–मोक्षमार्ग और उपेय–मोक्ष इन दोनों पर किंचित् विचार किया गया है। वस्तु के किसी एक धर्म को एकांत से मानने वाले मिथ्यादृष्टि हैं यहां उन्हें अज्ञानी और पशु कहा है क्योंकि वे स्वयं के हित अहित के विवेक से शून्य हैं। इससे अतिरिक्त वस्तु के एक एक धर्म को एक-एक नय विवक्षा से परस्पर सापेक्ष ग्रहण करने वाले स्याद्वादी हैं। वे ही तत्त्ववेत्ता हैं और ज्ञानी हैं। एकान्तवादी ज्ञान को ज्ञेयाकार मात्र मानते हैं किन्तु स्याद्वादी कहते हैं कि ज्ञान अपने स्वरूप से ज्ञान ही है, ज्ञेयाकार होने पर भी ज्ञानत्व को नहीं छोड़ता। इसलिए ज्ञान तत्स्वरूप है। अज्ञानी एकांत से ज्ञान को समस्त वस्तुस्वरूप मान लेता है। यह अतत् मान्यता हुई और स्याद्वादी कहते हैं ज्ञान अपने स्वरूप से तत्स्वरूप है वही ज्ञान परज्ञेयों के आकार होने से भी उनसे भिन्न है इसलिए अतत्स्वरूप है। इस प्रकार से तत् अतत् के २ भंग, एक अनेक के २ भंग, सत् असत् के द्रव्य क्षेत्र काल भाव से ८ भंग और नित्य अनित्य के २ भंग ऐसे १४ भंग हो जाते हैं। कलश २४८ से २६१ तक १४ काव्यों में यही बताया है कि एकांत मान्यता से ज्ञानमात्र आत्मा का अभाव हो जाता है। और अनेकान्त रूप स्वयं अनुभव में आ रहा है। सो ही श्री अमृतचन्द्रसूरि कहते हैं—

"अलंघ्यं शासनं जैनमनेकान्तो व्यवस्थितः" अनेकान्त रूप से व्यवस्थित जैन शासन किसी के द्वारा भी जीता नहीं जा सकता है। यहां तक अनेकान्त की व्यवस्था कहकर आगे उपाय और उपेय पर प्रकाश डालते हैं।

रत्नत्रय स्वरूप यह आत्मा ही उपाय है और भेदाभेद रत्नत्रय से स्वय ही अनंतचतुष्टय स्वरूप परिणत हो जाती है अतः यह आत्मा ही उपेय है। कलश २६६ में कहते हैं—

"जो महामुनि जैसे-तैसे भी मोह को दूर कर ज्ञानमात्र निजभाव रूपी अकंप भूमि का आश्रय लेते हैं अर्थात् शुद्धोपयोग में स्थित हो जाते हैं वे ही साधक बनकर सिद्ध बन जाते हैं "पुनरपि कहते हैं"—जो मुनि स्याद्वाद की कुशलता और निश्चल व्रतसमिति गुप्तिरूप संयम इन दोनों के द्वारा प्रतिदिन अपने ज्ञान स्वरूप आत्मा में उपयोग को लगाते हुए आत्मा की ही भावना करते हैं वे ही मुनि ज्ञाननय और क्रियानय से उन दोनों में परस्पर तीव्र मैत्री भाव के पात्र होते हुए निज ज्ञानमयी भूमिका को प्राप्त कर लेते हैं। अर्थात् जो मुनि भेद विज्ञान और संयम दोनों का अवलंवन लेकर अप्रमत्त कहते हैं वे ही शुद्धोपयोगी बन पाते हैं किन्तु जो मात्र भेदविज्ञान की चर्चा करते हैं किन्तु संयम में प्रमादी हैं अथवा जो संयम में दृढ़ हैं कठोर चर्या पालते हैं किन्तु भेद विज्ञान से रहित हैं, ऐसे मुनि शुद्धोपयोग की अवस्था को नहीं प्राप्त कर पाते हैं। इस "स्याद्वाद कौशल सुसंयमाभ्यां" पंक्ति से स्पष्ट हो जाता है कि समयसार के ज्ञानी पूर्ण संयमी होते हैं न कि असंयमी। असंयमी के समयसार में कथित ज्ञानमय आत्मा की चर्चा कोरी चर्चा ही है। चूंकि उनके ज्ञाननय और क्रियानय में परस्पर मैत्री नहीं है।

कलश २७४ में कहते हैं–एक तरफ देखिये तो कषायों का क्लेश दीख रहा है और एक तरफ देखिये तो कषायों के उपशमरूप शांत भाव है। एक तरफ देखिये तो संसार संबंधी पीड़ा दीखती है; तो एक तरफ देखिये संसार के अभाव रूप मुक्ति भी स्पर्श करती है। एक ओर देखने पर तीनों लोक दिख रहे हैं और एक तरफ देखिये तो केवल एक चैतन्य-मात्र ही स्फुरायमान हो रहा है। इस प्रकार से आत्मा के स्वभाव की महिमा अद्भुत तो क्या अद्भुत से भी अधिक अद्भुत हो रही है। "अर्थात् व्यवहारनय से देखने पर आत्मा में के कषायों का उद्रेक दिखता है, संसार की नाना पीड़ायें होती हैं और तीन लोक का दृश्य दिखता है,

किंतु जब निश्चय नय का अवलंबन ले लेते हैं तब आत्मा में शांति भाव प्रतीत होता है आत्मा में कर्मों के अभाव से आत्मा मुक्त है ऐसा श्रद्धान होता है और पुनः ध्यान की एकाग्रता में केवल एक चिच्चैतन्यमात्र आत्मा का ही प्रतिभास होता है। कलश २७६ में टीकाकार अपने नाम को सार्थक करते हुए कहते हैं—"उदितममृतचन्द्रज्योतिरेतत्स-मन्तात्, ज्वलतु।" उदय को प्राप्त अमृतचन्द्र ज्योति सर्वतः जाज्वल्य-मान रहे। "अर्थात् अमृतमय चन्द्रमा के समान ज्ञान ज्योति सदा देदीप्य-मान होती रहे। अंतिम कलश काव्य २७८ में अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए अपनी महानता को भी स्पष्ट कर देते हैं—"अपनी शक्ति से वस्तु तत्त्व को कहने वाले शब्दों के द्वारा इस समय प्राभृत ग्रन्थका अथवा समय—आत्मा का व्याख्यान किया गया है, स्वरूप में गुप्त मुझ अमृतचंद्र सूरि का इसमें कुछ भी नहीं है। यहाँ पर "स्वरूपगुप्तस्य" पद से स्पष्ट हो जाता है कि ये अमृतचंद्रसूरि अपनी आत्मा के स्वरूप का ध्यान करने में कुशल थे, छठे-सातवें गुणस्थान में आरोहण अवरोहण करने में दक्ष परम संयमी महामुनि ही होने चाहिए। इस प्रकार से यहाँ पर कलश २४७ से २७८ तक इस स्याद्वाद अधिकार को कहते हुए टीकाकार ने समय-सार व्याख्या में इन कलश काव्यों के साथ-साथ अपनी टीका रचना को पूर्ण किया है।

श्री कुंदकुंददेव ने प्राकृत गाथा में इस समयसार ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ की टीका करते हुए श्री अमृतचन्द्र सूरि ने ४१५ गाथाओं की टीका की है। इसी ग्रन्थ पर श्री जयसेनाचार्य ने "तात्पर्यवृत्ति" नाम से टीका रची है। उन्होंने ४३९ गाथाओं पर टीका की है और इन सभी गाथाओं को श्री कुंदकुंददेव कृत ही माना है। यथा—इति श्री कुंद-कुंददेवाचार्य विरचित समयसार प्राभृताभिधान ग्रन्थस्य संबंधिनी श्री जयसेनाचार्यकृता दशाधिकारैरेकोनचत्वारिंशदधिक गाथा शत चतुष्टयेन तात्पर्यवृत्तिः समाप्ता।" श्री जयसेनाचार्य द्वारा की गई समयसार की टीका बहुत ही सरल है। और गुणस्थानों की व्यवस्था को बतलाने वाली है। इसमें किस गाथा का विषय किस गुणस्थानवर्ती अनुभव का विषय है। इस बात को सर्वत्र स्पष्ट किया है। अतएव समयसार के मर्म को समझने के इच्छुक भव्यों को श्री जयसेनाचार्य कृत टीका का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये तभी इस समयसार के अमृतकलश को पढ़ने का आनंद आयेगा और सभी कलश काव्यों का भाव प्रतिभासित होगा।

आर्यिका अभयमती जी द्वारा रचित इन समयसार के अमृतकलशों का हिंदी पद्यानुवाद बहुत ही सरस है, सरल है और प्रिय है। इन्होंने ज्ञानाराधना में तन्मय होकर अत्यधिक श्रम से इस ग्रन्थ पर पद्य रचना की है। इसमें अनेक प्रकार के वर्णिक और मात्रिक छंदों का प्रयोग होने से रचना बहुत ही मधुर बन गई है। प्रत्येक पाठक गण इन ग्रन्थ का स्वाध्याय करें, इन हिंदी पद्यों को कंठाग्र करें, उनका प्रतिदिन पठन, चिंतन और मनन करते हुए अपनी आत्मा में निर्मल भेद ज्ञान की ज्योति प्रकट करें यही मेरी शुभ कामना है।

साध्य-साधक विचार

■ ■

अथ साध्य-साधकविचारः

अथानन्तशक्तियुक्तितां संवक्ति—

वसन्ततिलकावृत्तम्

इत्याद्यनेकनिजशक्तिषु निर्भरोऽपि-
यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः ।
एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं
तद् द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्तु वस्तु ॥२६४॥

अथ स्याद्वादतः शुद्धि दीव्यति—

वसन्ततिलकावृत्तम्

नैकान्तसंगतदृशा स्वयमेव वस्तु
तत्त्वव्यवस्थितिमिति प्रविलोकयन्तः ।
स्याद्वादशुद्धिमधिकामधिगम्य सन्तो
ज्ञानी भवन्ति जिननीतिमलङ्घयन्तः ॥२६५॥

अथास्योपायोपेयभावः सम्भाव्यते—

वसन्ततिलकावृत्तम्

ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीमकम्पां
भूमिं श्रयन्ति कथमप्यपनीतमोहाः ।
ते साधकत्वमधिगम्य भवन्ति सिद्धा,
मूढास्त्वमूमनुपलभ्य परिभ्रमन्ति ॥ २६६॥

अथ शुद्धोपयोगभूमिप्राप्त्युपायं लक्षयति—

वसन्ततिलकावृत्तम्

स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां
यो भावयत्यहरहः स्वमिहोपयुक्तः ।
ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्री
पात्रीकृतः श्रयति भूमिमिमां स एकः ॥२६७॥

साध्य-साधक विचार

आत्मा अनन्त शक्ति युक्त है—यह कहते हैं—

रथोद्धता छंद (वर्णिक)

आत्म यद्यपि अनेक शक्ति से–
पूर्ण युक्त फिर भी स्वभाव से।
ज्ञानमात्र गुण ना तजे वो–
जो विवर्ति गुण द्रव्य युक्त सो ॥२६४॥

स्याद्वाद से शुद्धि होने का वर्णन करते हैं—

रथोद्धता छन्द (वर्णिक)

वुद्ध तत्त्व सुव्यवस्थ रूप ही
स्याद्वादमय दृष्टि से लही।
जैन नीतिह अलंघ्य जान के
स्याद्वाद लह शुद्ध मोक्ष वे ॥२६५॥

इस ज्ञानमात्र भाव के उपायोपेय भाव का चिन्तन करते हैं—

रथोद्धता छंद (वर्णिक)

मोह नष्ट जिसका प्रबुद्ध सो,
आत्म ज्ञान सु अकंप भूमि सो।
साधकत्व लह सिद्ध हो सदा,
मूढ़ ज्ञान लह ना भ्रमे कदा ॥२६६॥

शुद्धोपयोगभूमि की प्राप्ति का उपाय कहते हैं—

रथोद्धता छंद (वर्णिक)

स्याद्वाद सुचरित्र ध्यान से–
नित्य आत्म उपयोग आप से।
दो परस्पर नयों में मित्रता
पात्र ज्ञानमय भूमि साधता ॥२६७॥

अथात्मोदयमवगमयति—

वसन्ततिलकावृत्तम्

चित्पिण्डचण्डिमविलासिविकासहासः
शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः ।
आनन्दसुस्थितसदास्खलितैकरूपः-
तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा ॥२६८॥

अथ स्वस्वभावविस्फुरणं काम्यति—

वसन्ततिलकावृत्तम्

स्याद्वाददीपितलसन्महसि प्रकाशे
शुद्धस्वभावमहिमन्युदिते मयीति ।
किं बन्धमोक्षपथपातिभिरन्यभावैः
नित्योदयः परमयं स्फुरति स्वभावः ॥२६९॥

अथ चिन्महो रोचते—

वसन्ततिलकावृत्तम्

चित्रात्मशक्तिसमुदायमयोऽयमात्मा
सद्यः प्रणश्यति नयेक्षणखंडचमानः ।
तस्मादखण्डमनिराकृतखण्डमेक-
मेकान्तशान्तमचलं चिदहं महोऽस्मि ॥२७०॥

अथ ज्ञानमात्रत्वं मन्यते आत्मनः—

मालिनी-वृत्तम्

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव ।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन्
ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥२७१॥

ज्ञानमयी भूमि को प्राप्त करने वाले को ही आत्मा का उदय होता है—
यह कहते हैं—

रथोद्धता छन्द (वर्णिक)

भास रूप चित पिंड तेज से—
शुद्ध ज्योतिहि समूह शोभते।
सु:स्वरूप थिर अद्वितीय है
ज्ञान ज्योति लह आत्म सो लसे ॥२६८॥

स्वभाव के प्रकट होने की इच्छा दिखलाते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

जिसका चमचम करता स्वतेज, स्याद्वाद विभूषित शोभ रहे।
अरु महिमा शुद्ध स्वभाव यही निज ज्ञान तेज मम उदय लहे ॥
फिर वंध मुक्ति पथ में च्युत मुझको भावों से क्या मतलब है।
जव नित्य उदय मेरा स्वभाव यह निज में अतिशय रूप लसे ॥२६९

ज्ञानी एक अखण्ड आत्मा की भावना करता है—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

नित वहुविध आत्मशक्ति का जो समुदाय रूप यह आत्मा है।
वह नय सुदृष्टि से खंड खंड होकर तत्काल विनशता है ॥
जो अत: सदा अनुभव करता चिदरूप अखंड ज्योति मैं हूँ।
फिर भी जिसके नहिं खंड हुए, जो शांत अचल इक रूप कहूँ ॥२७०

आत्मा ज्ञान ज्ञेय और ज्ञाता स्वरूप है—यह कहते हैं—

मुक्तक छन्द (मात्रिक)

मैं ज्ञानमात्र ही भाव नित्य हूँ, इस प्रकार से कोई कहे।
पर उसे ज्ञेय का ज्ञानमात्र नहिं, समझो तुम अपने मन में ॥
पर यही ज्ञेय आकार रूप जो, ज्ञान लहर से चंचल है।
ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता इन त्रय भेदों युत वस्तू मात्र कहे ॥२७१

अथात्मनः प्रतिभासभेदं सम्पूरयति—

पृथ्वी-वृत्तम्

क्वचिल्लसति मेचकं क्वचिन्मेचकामेचकं,
क्वचित्पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम ।
तथापि न विमोहत्यमलमेधसां तन्मनः,
परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं स्फुरत् ॥२७२॥

अथैकत्वानेकत्वादिप्रतिभासनं वाभाषते—

पृथ्वी-वृत्तम्

इतो गतमनेकतां दधदितः सदाप्येकताम्,
इतः क्षणविभंगुरं ध्रुवमितः सदैवोदयात् ।
इतः परमविस्तृतं धृतमितः प्रदेशैर्निजैः
अहो सहजमात्मनस्तदिदमद्भुतं वैभवम् ॥२७३॥

अथात्मनः स्वभावो विजयते—

पृथ्वी-वृत्तम्

कषायकलिरेकतः, स्खलति शान्तिरस्त्येकतः
भवोपहतिरेकतः स्फुरति चिच्चकास्त्येकतः
जगत्त्रितयमेकतः स्फुरति चिच्चकास्त्येकतः
स्वभावमहिमात्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुतः ॥२७४॥

अथैकत्वं तस्य जेगीयते—

मालिनी-वृत्तम्

जयति सहजतेजःपुञ्जमज्जत्त्रिलोकी,
स्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एव स्वरूपः ।
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलम्भः
प्रशमनियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एषः ॥२७५॥

आत्मा की अनेकरूपता ज्ञानियों के मन में भ्रम उत्पन्न नहीं करती—

मुक्तक छन्द (मात्रिक)

ज्ञानी ऐसा अनुभव करता, मम सहज तत्त्व निज मेचक है ।
वह मेचक अरु रहे अमेचक, मेचक भी कहीं अमेचक है ॥
तो भी निर्मल मति के धारक वे संत न उर में भ्रान्ति धरें ।
वही परस्पर मिलकर प्रकटहि निज शक्ति समूह से युक्त लसे॥२७२

आत्मा के एकत्व अनेकत्वादि का प्रतिभासन कहते हैं—

मुक्तक छन्द (मात्रिक)

अहो आत्मगुण का यह वैभव जो सहज बड़ा अद्भुतकारी ।
इस ओर अनेक स्वरूप धरे इस ओर एकता गुणधारी ॥
इक ओर निरन्तर क्षणभंगुर इक ओर उदय रहता ध्रुव है ।
इक ओर परम विस्तृत है तो, इक ओर स्वकीय प्रदेश लहे ॥२७३

आत्मा की आश्चर्यकारक महिमा का वर्णन करते हैं—

मुक्तक छन्द (मात्रिक)

इक ओर कषाय कलह दिखता, इक ओर प्रशांति प्रसार धरे ।
इक ओर विश्व की बाधा तो, इक ओर मुक्ति स्पर्श करे ॥
इक ओर जगत्त्रय शोभ रहे, इक ओर मात्र चैतन्य लसे ।
ऐसा स्वभाव महिमा अद्भुत से अद्भुत ही जय रूप लखे ॥२७४

अब चिच्चमत्कार का स्तवन करते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

जब निज स्वभाव के तेज पुंज में मग्न हुए त्रैलोक्य सभी ।
अर्थों से जिसमें बहु विकल्प कर एक स्वरूप लहे फिर भी ॥
स्वरस भार से पूर्ण अवाधित तत्त्वोपलब्धि निज में जिसकी ।
निज दीप्ति प्रबल नियमित ऐसा चिच्चमत्कार जयवंत यही॥२७५

अथ कर्तृतागर्भितमात्मज्योतिर्जाज्वल्यते—

मालिनी-वृत्तम्

अविचलितचिदात्मन्यात्मनात्मानमात्म-
न्यनवरतनिमग्नं धारयत् ध्वस्तमोहम् ।
उदितदमृतचन्द्रज्योतिरेतत्समन्तात्
ज्वलतु विमलपूर्णं निःसपत्नस्वभावम् ॥२७६॥

अथात्मकर्मणोर्द्वैतेऽपि ज्ञानोद्योतं नरीनृत्यते—

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

यस्माद् द्वैतमभूत्पुरा स्वपरयोर्भूतं यतोऽत्रान्तरं
रागद्वेषपरिग्रहे सति यतो जातं क्रियाकारकैः ।
भुञ्जाना च यतोनुभूतिरखिलं खिन्ना क्रियायाः फलं,
तद्विज्ञानघनौघमग्नमधुना किञ्चिन्न किञ्चित् किल ॥२७७॥

अथात्मगुप्तस्य स्वतत्त्वसंसूचकस्य समयसारकृतिकृतत्वमस्यक्तविशुद्धबुद्ध-चित्स्वरूपभूरेरमृतचन्द्रसूरेः कृतकृत्यत्वं कीर्त्यते—

उपजाति-वृत्तम्

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वैः व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः ।
स्वरूपगुप्तस्य न किञ्चिदस्ति कर्त्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः ॥२७८॥

श्री अमृतचन्द्राचार्य अपना नाम प्रकट करते हुए आत्मज्योति के दैदीप्यमान रहने की इच्छा प्रकट करते हैं—

मुक्तक छन्द (मात्रिक)

जो चित्स्वरूप से मुक्त अचल आत्मा में नित ही रमण करें।
निज में निज के द्वारा निज को धारण कर मोह विनष्ट करें ॥
जो सर्व ओर से उदित पूर्ण निर्मल स्वभाव निष्पक्ष लहे।
ऐसी अमृतमय चन्द्रज्योति सम आत्मज्योति दैदीप्य रहे ॥२७६

विज्ञान के उत्पन्न होने पर अज्ञान भाव समाप्त हो जाता है—यह कहते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

जिस भाव पूर्व से स्वपर द्वैत, इक भाव निजी अन्तर करता।
उस अन्तर से लह रागद्वेष फिर कारक क्रिया भेद धरता ॥
फिर उससे निज अनुभूति क्रिया का सब फल चख कर खेद लहे।
अज्ञान ज्ञान घन के समूह में मग्न अतः फिर कुछ न रहे ॥२७७

ग्रन्थकर्त्ता दूसरे ढंग से ग्रन्थ के प्रति अपना अकर्तृत्व सूचित करते हैं—

मुक्तक छंद (मात्रिक)

जो निज शक्ती से वस्तु तत्त्व को सूचित करने वाले हैं।
ऐसे शब्दों से समयसार आगम की व्याख्या की मैंने ॥
स्वरस लीन अमृतचन्द्रसूरि कहते मैंने कुछ किया नहीं।
ऐसे अमृत कवि को नित ही श्री "अभयमती" कर नमन सही ॥२७८

भूल क्षम्य हो

दोहा

कुन्दकुन्द की मूल कृति अमृत कलश चढ़ाय,
गुरुओंके आशीश से रचना दिया बनाय।
लेखक कवि मैं हूं नहीं और न किंचित ज्ञान,
भूल चूक यदि हो जहाँ शुद्ध करें विद्वान ॥
अक्षर मात्रा छन्द में यदि त्रुटियाँ कुछ होंय।
तो पंडित जन शोध कर पढ़ें दुराग्रह खोय ॥

स्थान एवं समय आदिक का परिचय

बुंदेल खंड यात्रा निमित छोड़ा गुरु का संघ।
दर्शनीय अरु पूज्य सब मूर्ति दिखें आनंद ॥
सिद्ध क्षेत्र के दर्शकर सिद्ध हुए सब काज।
अतिशय क्षेत्र कि बंदना सफल हुई मम आज ॥

इस ही बुंदल खंड में खुरई नगर लहाय।
सी० पी० में तहसील जो सागर जिला कहाय ॥
धार्मिक संत जहाँ बसें, और बसें विद्वान।
गुरुकुल विद्यालय महा केन्द्र बना बलवान ॥

ईश्वरबारा क्षेत्र के दर्शन कर सुख पाय।
जब समाज आग्रह किया खुरई नगर लहाय ॥
स्वास्थ हुआ अस्वस्थ जब, होनहार बलवान।
आग्रह हुआ समाज का चतुर्मास ले ठान ॥

समयसार पर मैं जभी दिया शुद्ध उपदेश।
श्रावक हर्ष विभोर हो सुनकर तजे कलेश ॥
पार्श्व प्रभू अतिशय बड़ा बाबा बड़े कहाय।
चरणों में जाकर पड़ी मानो ध्वनि खिर जाय ॥

समयसार अनुवादकर मानों कहें जिनेश।
विज्ञ जनों की प्रेरणा जभी हुई सविशेष ॥
पार्श्वप्रभू की भक्ति से हुई आत्म में शक्ति।
शुरू किया अनुवाद जन रचा छंद में पंक्ति ॥

जातिस्मरण हुआ जभी नृप श्रेयांस कुमार।
सुदि बैसाख सुतीज को ऋषभ को दिया अहार ॥
नवधाभक्ति सुदान से पंच वृष्टि सुख खान।
अक्षय निधि उस दिन हुई अक्षय तृतिया नाम ॥

इसी तृतीया के दिवस शुरू किया अनुवाद।
वीर प्रभू निर्वाण दिन पूर्ण हुआ अनुवाद ॥
जबतक जग में नित्य ही हो स्याद्वाद प्रचार।
"सरस पद्य" अमृत कलश तबतक रहे प्रसार ॥
जो इसको पढ़ते सदा हो अध्यात्म प्रवीण।
"अभयमती" कहती सदा समयसार जयवीर ॥

●

परमपूज्य १०५ आर्यिका श्री अभयमति माताजी द्वारा रचित अन्य प्रकाशन

१. पीयूषवाणी
२. अभयवाणी : प्रथम भाग
३. अभयवाणी : द्वितीय भाग
४. भगवान महावीर का अमर संदेश
५. अभय ध्वनि
६. अभय गीतांजलि : प्रथम पुष्प
७. जैन संस्कृति शतक
८. चन्द्रप्रभुचालीसा एवं सोनागिर का चमत्कारिक इतिहास
९. अभय गीतांजली : द्वितीय पुष्प
१०. द्वादशांग विवेचन
११. दशधर्म विवेचन
१२. पुरुषार्थ सिद्धुपाय पद्यावली
१३. "आत्म-पथ की ओर"
१४. "समयसार अमृत-कलश" : पद्यावली
१५. एक वृक्ष सात डालियां : पद्यावली
१६. परमात्म प्रकाश "सरस काव्य पद्यावली"
१७. आत्मानुशासन "सरस काव्य पद्यावली"
१८. अमृत-वाणी
१९. भव्य स्तोत्र संग्रह "सरस काव्य पद्यावली"
२०. रयणसार "सरस काव्य पद्यावली"